प्रकाशक—
शिव प्रकाशन
आगरा।

द्वितीय संस्करण १९५८
मूल्य १।)

विषय-सूची

प्रस्तावना

हमारे साहित्य में देश के महान् पुरुषों की जीवनियों का बहुत ही अभाव है। ऐसे जीवन चरित्रों से राष्ट्र के नवयुवकों के चरित्र निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है अतः आज जब कि हमारा देश स्वतन्त्र है इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि जिन महापुरुषों ने देश को स्वतन्त्र किया है तथा आज भी जो राष्ट्र के कर्णधार हैं उनके जीवन की झांकी अपने नवयुवकों को कराई जाय जिससे उनको देश पर सब कुछ न्योछावर कर देने की प्रेरणा मिले। इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने यह पुस्तक लिखी है। यदि पाठकों ने इससे तनिक भी लाभ उठाया तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

: १ :

महात्मा गाँधी—भारत की आत्मा

वंश परिचय तथा जन्म

महात्मा गांधी का वास्तविक नाम मोहनदास करमचन्द गांधी था। इनके पिता जी करमचन्द गांधी अथवा कबा गांधी पोरबन्दर में दीवान थे। बाद में राजस्थानी कोर्ट में सभासद रहे। इनके पिताजी के चार विवाह हुए थे। अन्तिम पत्नी का नाम पुतलीबाई था। इन्हीं पुतलीबाई के गर्भ से हमारे राष्ट्र पिता—श्री मोहनदास गांधी का जन्म हुआ था। ये अपने पिता के सबसे छोटे पुत्र थे। इनका जन्म आश्विन बदी १२ सवत् १६२५ अर्थात् २ अक्टूबर सन १८६८ के दिन पोरबन्दर अथवा सुदामापुरी में हुआ था। यहां पर यह बता देना अनुपयुक्त न होगा कि गुजरात काठियावाड़ में पंसारी को गांधी कहते हैं, परन्तु इनकी तीन पुश्तें काठियावाड़ के भिन्न-भिन्न राज्यों में दीवानगीरी का काम करती आई थीं।

स्वयं लिखा है कि, "मेरे हृदय में श्रवण और हरिश्चन्द्र आज भी जीवित हैं। मैं चाहता हूँ कि आज भी यदि मैं उन नाटकों को पढ़ूँ तो आँसू आए बिना नहीं रहेंगे।" खैर लगभग १३ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। पत्नी के बारे में इनकी प्रारम्भ से यही इच्छा रहती थी कि वे दोनों एक मन दो तन बनकर रहें।

तीसरी-चौथी कक्षा पास कर चुकने के बाद यह मूर्ख विद्यार्थियों में न रहे। इन्हें दो तीन बार छात्र वृत्तियां भी मिलीं।

मांस-भक्षण, चोरी तथा अहिंसा का पहिला पाठ

यह तो हम बता ही चुके हैं कि हमारे चरित्रनायक एक तरह से भोंदू लड़कों में से थे, साथ ही डरपोक भी थे। अपनी इस डरपोक प्रवृत्ति के कारण इन्हें अपनी पत्नी के सम्मुख विशेष लज्जा मालूम होती थी। इनके एक मित्र ने इनसे कहा कि मांस न खाने से ही आदमी डरपोक बन जाता है। वह मांस खाता है—इसी कारण भूत-प्रेत, सांप आदि किसी से नहीं डरता। अँग्रेज भी मांस खाने के कारण ही हट्टे कट्टे हैं और हम पर राज्य करते हैं। हिन्दुस्तानी इसीलिये मुर्दा बने हुये हैं क्योंकि वे मांसाहार नहीं करते— आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि उसकी बातों में आकर इन्होंने मांस खाना आरम्भ कर दिया। एक बार पास में पैसा न रहने से इन्होंने घर में चोरी की। उस चोरी से इनके मन में बड़ी ग्लानि हुई। इन्हें अपने आप मन में बड़ा पश्चाताप हुआ। फलतः इन्होंने पिताजी से एक पत्र द्वारा क्षमायाचना की। पत्र पढ़ते पढ़ते इनके पिताजी ने अपनी आँखें मूँद लीं और रोने लगे। साथ ही हमारे चरित्रनायक भी रोते रहे। इस पितृ वात्सल्य ने इन्हें बींध डाला। यह मानों इनके लिए अहिंसा की प्रथम शिक्षा थी। इस घटना के बारे में इन्होंने स्वयं लिखा है कि, "इस मोती बिन्दु के प्रेमबाण ने मुझे बींध डाला। मैं बद्ध हो गया। प्रेम को तो वही परख सकता है जिसे उसका अनुभव हुआ हो —

देना अप्रासंगिक न होगा। विलायत जाते समय इनकी माताजी ने यह वचन ले लिये थे कि वह जैन धर्म की प्रतिज्ञा का पूर्ण निर्वाह करेंगे—अर्थात् न तो कभी मदिरा—पान करेंगे, न कभी मांस भक्षण करेंगे और न कभी भूल कर भी किसी स्त्री के साथ सहवास ही करेंगे! यह कहना अनुचित न होगा कि इन्होंने इन तीनों वचनों का अक्षरशः, अक्षरशः ही नहीं, बल्कि मनसावाचा कर्मणा सब तरह से ही पूर्ण पालन किया।

विलायत पहुंचने पर कुछ प्रारम्भ के दिन इन्होंने एक तरह से व्यर्थ ही गंवाए। इन दिनों यह बराबर अँग्रेज़ बहादुर बनने की चेष्टामें संलग्न रहे। ये प्रारम्भिक महीने एक तरह से अनिश्चितता तथा आत्म-भ्रान्ति के थे। इनके विषय में इन्होंने स्वयं लिखा है "Wasted a lot of time trying to become an English man"! परन्तु यह शीघ्र ही अपने निश्चित जीवन में बैठ गये और सतत परिश्रम के साथ एक नियमित एवं संयमित जीवन व्यतीत करने लगे। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उनका कल्याण हिन्दू धर्म में ही है। इन्हीं दिनों इन्हें श्रीभगवद् गीता से साक्षात्कार हुआ। यहीं पर इन्हें यह प्रतीत हुआ कि भगवद् गीता ही मनुष्य को शान्ति दे सकती है, वही अन्धकार की घटा घिरी होने पर मंगल ज्योति का मार्ग बताती है। भगवद्गीता वास्तव में वह शक्ति है जो दुःखित हृदय में मंगलाशा का संचार कर देती है।

गीता के सम्बन्ध में इनके कुछ विचार

इन्होंने सबसे पहले एडविन आर्नल्ड के पद्यानुवाद से गीता से गीता पढ़ी थी। बाद में गीता पर 'अनासक्तियोग' करके स्वयं भी एक टीका लिखी! गीता के सम्बन्ध में महात्माजी के ये शब्द स्मरणीय हैं—"गीता के लिये ही मैंने संस्कृत पढ़ी। आज के दिन गीता मेरे लिये न केवल कुरान अथवा बाइबिल ही है, बल्कि वह मेरे लिये

उससे कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी वस्तु है—वह मेरी माता है। मेरी माँ मुझे बचपन में ही छोड़ कर चली गई थीं। परन्तु गीता ने सदैव के लिये उनके रिक्त स्थान की पूर्ति कर दी। गीता न तो परिवर्त्तनशील न कभी धोखा देने वाली—आप हर घड़ी उस पर भरोसा कर सकते हैं। मैं जब कभी किसी भी विपदा अथवा कठिनाई में पड़ जाता हूं, तब उसी की गोद में जाकर शरण लेता हूं— ठीक उसी तरह जिस तरह चोट लग जाने अथवा भूख लगने पर बच्चा अपनी माता की गोद में लेट जाता है)।"

अनासक्तियोग में भी इन्होंने इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं—। गीता हमारे लिये आध्यात्मिक निदान ग्रन्थ हैं। उसके अनुसार आचरण में निष्फलता नित्य आती है पर वह निष्फलता हमारा प्रयत्न रहते हुये है इस निष्फलता में सफलता की फूटती हुई किरणों का झलक दिखाई देती है यह नन्हा सा जनसमुदाय जिस अर्थ को आचरण में परिणत करने का प्रयत्न करता है वह अर्थ इस अनुवाद में है।

विलायत से वापिस

जिस समय यह विलायत में ही थे उन्हीं दिनों इनकी माताजी परलोक गामिनी हो चुकी थीं। सन् १८९१ में यह विलायत से बैरिस्ट्री की परीक्षा पास करके भारतवर्ष लौटे। घर आते समय अपनी माताजी की स्मृति इन्हें दुःखी कर देती थी।

भारतवर्ष आने पर बम्बई के बड़े हाईकोर्ट में इन्होंने बैरिस्ट्री शुरू की। यहाँ भी यह इस बात का विचार रखते थे कि वह झूठा मुकद्दमा लड़ाकर अन्याय के पक्ष का कभी समर्थन न करें। अन्ततोगत्वा वकालत को बेईमानी का धंधा समझ कर इन्होंने बैरिस्ट्री करना छोड़ दिया।

इस बीच में यह अन्य अनेक महानुभावों के सम्पर्क में आये।

इनके ऊपर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले दो व्यक्ति थे—दादाभाई नौरोजी तथा प्रोफेसर गोखले। उनके प्रभाव से इनके अन्तःकरण की वे भावनायें जागृत हो पड़ी जिनके कारण यह अपने जीवन का उद्देश्य निश्चित कर सके थे। एक तरह से दादाभाई नौरोजी ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के जन्मदाता थे। उन्हीं ने गांधी जी को पहिला पाठ अहिंसा का पढ़ाया था उनकी नवयुवकोचित अधीरता का उन्नयन करने में दादाभाई का ही प्रयास निहित है।

दक्षिण अफ्रीका और गांधीजी

सन् १८६०—६१ में लगभग १५०००० भारतवासी दक्षिण अफ्रीका में विशेषकर नटाल में जाकर बस गये थे। सफेद चमड़ी वाले विदेशियों को यह सहन न था। उनकी सरकार ने यह चाहा कि एशिया वालों का आना सर्वथा बन्द हो और जो लोग आगये हैं, वे यहाँ से चले जावें। फलतः वहां की सरकार ने भारतवासियों को तरह-तरह से सताना प्रारम्भ कर दिया, उन पर अनेक अवैधानिक कर लगा दिये गये, पुलिस उन पर तरह तरह के अत्याचार करती थी। इन अत्याचारों में तरह तरह के अपमानों से लेकर उनके माल तथा जमीन जायदाद आदि का लूट लेना जैसे अमानुषीकृत्य सम्मिलित थे। इस तरह श्वेत सभ्यता काले भारतवासियों के सन्मुख नंगी नाच रही थी। गांधीजी उस समय वहीं थे।

सन् १८६३ में किसी आवश्यक कार्य से गांधीजी प्रटोरिया (Pretora) गये। रास्ते में इन्हें कई जगह अपमानित होना पड़ा। इन सबको ब्यौरेवार देने का न तो यहां स्थान ही है और न उसकी आवश्यकता ही प्रतीत होती है। हम केवल इतना कह कर ही अपना काम चलाते है कि इन्हें कभी होटलों से निकाल दिया जाता था, तो कभी रेलों से धकेल दिया जाता था कभी कोई इनमें ठोकरें लगा देता

था। इङ्गलैण्ड और यूरोप के सभ्य निवासी यहाँ आकर गवर्नर बन गये थे। गांधी जी को यह बात परेशान किये हुये थी। इंगलैण्ड में उनके साथ अत्यन्त शिष्टता पूर्ण एवं सुसंस्कृत व्यवहार होता था परन्तु यहां लीला ही निराली थी। जहा एक ओर वे विलायत में अनेक अभिन्न हृदय मित्र बनाकर लौटे थे वहाँ दूसरी ओर अफ्रीका में इन्हें श्वेत शत्रु ही दिखाई देते थे। यहाँ पर भारतवासी पहले तो परदेशी थे फिर अव्यवस्थिता। न तो उनके पास विरोध करने का साहस ही था और न साधन एव शक्ति। इन साधन विहीन भारतवासियों का कोई भी सहारा नहीं था। वे एकदम निरुपाय थे। सम्भवत: गांधीजी भी ऊबकर भारतवर्ष लौट आये होते परन्तु चाकरी के बंधनों के कारण वहां १२ महीने तक रहना अनिवार्य था। बस परमात्मा की इच्छा, इन्होंने आत्म-संयम का अभ्यास कर डाला! बस इन्होंने निर्णय कर लिया कि दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतियों की लड़ाई आज से उनकी भी लड़ाई होगी। बस अब क्या था, वह उसी में जी जान से जुट गये।

यह तो पाठक जानते ही हैं कि गांधीजी बैरिस्टर थे। उनका सबसे पहिला काम यह था कि उन्होंने उस समय बनाये गये कानून को नियम विरुद्ध (अवैधानिक) सिद्ध किया। फिर बाद में अहिंसात्मक असहयोग का आन्दोलन छेड़ दिया। वे कभी किसी कारखाने में हड़ताल कराते, तो कभी कोई संस्था स्थापित कर लेते थे। फल स्वरूप इन्हें कई बार जेल भेजा गया। परन्तु इन अत्याचारों के कारण इनके साहस में कोई अन्तर नहीं आया। इसके विपरीत ज्यों-ज्यों अत्याचार होते गये, त्यों-त्यों इनका संकल्प अधिक दृढ़ होता गया। इसी तरह २० वर्ष बीत गये।

गांधी जी की सेवाएँ एक तरह से निष्काम थीं। उनकी कहीं भी कोई कमी नहीं थी। इधर शासकों का विरोध भी बढ़ता जाता था। परन्तु गांधी जी अपने मार्ग में अडिग थे। इस प्रकार का सत्याग्रह का

तत्त्वज्ञान विशुद्ध भारतीय संस्कृति के अनुकूल ... । वह विशुद्ध भारतीय संस्कृति के मूल, जीवन की शुद्धता एव नैतिकता से जन्म लेता है। इस नीति का उन्होंने व्यापक प्रयोग किया और व्यक्तिगत साधना के जीवन से ऊपर उठाकर विश्व के राजमार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। दक्षिण अफ्रीका में की गई बर्बर हिंसा के बदले में इन्होंने सन् १९०८ में हिन्द स्वराज्य करके छोटी सी पुस्तक लिखी। यह पुस्तक आगे जाकर भारतवर्ष में होमरूल आन्दोलन का प्राण बनी थी।

सन् १९०७ से लेकर सन् १९१४ तक के समय में इनका संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका था। बड़े-बड़े अंग्रेज़ों का विरोध होते हुए भी दक्षिण अफ्रीका सरकार ने जल्दी में सन् १९०६ में एक कानून पास कर दिया। उसके बन जाने से इन्होंने अपने असहयोग अन्दोलन का क्षेत्र और भी बढ़ा दिया। अब इनके साथ केवल भारतवासी ही नहीं बल्कि चीन वाले भी आ गये थे। हजारों की तादाद में आदमी जेलों में भरे जाने लगे। जब जेलों में जगह न रही, तो उन्हें खदानों के गड्ढों में फेंका जाने लगा। परन्तु संग्राम जारी था!

दक्षिण अफ्रीका के इन अत्याचारों ने भारतीय जनता को क्षुब्ध कर दिया था। फलत: उस समय के वाइसराय लार्ड हार्डिंज ने सरकारी तौर पर दक्षिण अफ्रीका की सरकार से शिकायत की। जनरल स्मट्स (जो आज भी जीवित हैं) भारतवासियों के भयंकर विरोधी थे। परन्तु कोई क्या करता? आखिर सत्य और न्याय की जड़ हरी है। सन् १९१४ में तीन—पाउण्ड—पोल—टैक्स कानून का अन्त हुआ और नैटाल में बसने के लिये सब भारतवासियों को स्वतन्त्रता दे दी गई। २० वर्ष के अबाध एवं अटूट त्याग तथा कष्टसहिष्णुता के बाद अन्त में जाकर विजय हुई। सब को गांधी जी की सफलता पर आश्चर्य था। दक्षिण अफ्रीका के अत्याचार गांधी जी का कुछ भी न बिगाड़ सके— ठीक उसी तरह जिस तरह बलशाली रोमराज्य की सामन्तशाही को

प्रारम्भिक एवं बलहीन ईसाइयों का खोज मिटाने के प्रयत्न में स्वयं ही नतमस्तक होना पड़ा था। यहां यह बता कर कि कभी-कभी शान्त नीति के कारण, गांधी जी को अपने देश-वासियों के कोप का भी भाजन होना पड़ता था, हम अब इस प्रसग को समाप्त करते हैं।

दक्षिण अफ्रीका से वापिस

सन् १६१४ में महात्माजी जब दक्षिण अफ्रीका से लौटे, उस समय इनको एक सम्भावित नेता की दृष्टि से देखा जाने लगा था। राष्ट्रीय आन्दोलन तो बहुत दिनों से चला आता था, परन्तु अब तो यहां के निवासी गांधी जी की ओर नेतृत्त्व के लिये देखने लग गये थे। दक्षिण अफ्रीका में अहिंसा की सफलता के कारण गांधी जी का अहिंसा में विश्वास दृढ़ हो गया था। इस समय वे इंगलैण्ड तथा अंग्रेजों के विरोधी नहीं थे। इन्होंने यह निश्चय किया कि पहिले भारतवर्ष की परिस्थितियों का अच्छी तरह से अध्ययन कर लेना चाहिए।

गाँधी जी का सत्य

सन् १६१४—१६ वाले महायुद्ध में इन्होंने यही निर्णय किया कि अंग्रेजों की सहायता करने में ही हित है। फलतः सन् १६१४ में ये स्वयं सेवकों की व्यवस्था करने के सिलसिले में स्वयं विलायत गये थे। सन् १६१६ तक इनके ये ही विचार थे। वास्तविक बात तो यह है कि सन् १६१६ में एक गांधीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग नहीं लिया था। लड़ाई के दिनों में इन्होंने पल्टन के लिए बड़ी तत्परता के साथ रंगरूटों की भर्ती करवाई। बाद में जब रौलेट एक्ट बना, जलियां वाले बाग का हत्याकाण्ड हुआ, तब अंग्रेजों के प्रति इनका विश्वास जाता रहा। अब यह समर में कूद पड़े। उस समय तिलक महाराज भी मैदान में थे। इस सम्बन्ध में हम केवल एक बात बता कर आगे

चलते हैं। तिलक और गांधी में राजनीतिक विचार धारा के सम्बन्ध में कुछ मतभेद हो गया था—यद्यपि दोनों ही एक दूसरे को समुचित सम्मान की दृष्टि से देखते थे। तिलक महाराज का विचार था कि देश का हित सर्वोपरि है। देश की स्वतन्त्रता सत्य से भी ऊपर है। स्वतन्त्रता संग्राम में सत्य की हत्या करके अगर विजय मिलती हो, तो सत्य की हत्या करने में कोई पाप नहीं। परन्तु गांधी जी के विचार भिन्न थे। उनके विचार से सत्य सर्वोपरि था। अगर सत्य की हत्या करके स्वतन्त्रता मिलती है तो ऐसी स्वतन्त्रता गांधी जी के लिये व्यर्थ था। वे इसी सिद्धान्त पर आज तक अडिग बने रहे। उनके विचार से व्यक्ति से बड़ा देश है और देश से बड़ा सत्य है, जिसका हम सबको अनुभव करना है। सत्य के विना स्वतन्त्रता रह ही नहीं सकती। सत्य को ठुकराना परमात्मा के अस्तित्व को न मानना है। सत्य के सम्बन्ध में उनके ये विचार कोई बाद में नहीं आये थे। वे प्रारम्भ से सत्य के अनन्य उपासक थे। बहुत दिन पहिले से वह इन विचारों का प्रचार करने लग गये थे।

"मेरी गीता मुझसे कहती है कि शुभ कार्य का फल कभी अशुभ नहीं हो सकता" (यंग इण्डिया सन् १९२५) (प्रत्येक देश की धार्मिक पुस्तकों में सत्य का प्रतिपादन किया गया है सन् १९२४, यंगइण्डिया)। "मैं जानता हूं परमात्मा सत्य है।......भारतवर्ष की स्वतन्त्रता सत्य पर समा-धारित होने के कारण कभी भी संसार के लिये कष्टप्रद नहीं हो सकती" (यंगइण्डिया सन् १९२४)।

इसी तरह एक बार यरवदा जेल में कहा था कि "सत्य अनन्त है—क्योंकि वह परमात्मा का प्रतिरूप है। यही कारण है सत्य के द्वारा मिलने वाला आनन्द भी अक्षय ही होता है। सत्य में मेरा विश्वास दिनोदिन दृढ़ होता जा रहा है।" इत्यादि।

गांधी जी की अहिंसा

जिस तरह गांधी जी के लिये जगत में सर्वत्र व्याप्त तथ्य का नाम सत्य था, ठीक उसी तरह उनके लिये संसार के प्रति व्यवहार का नाम अहिंसा था। अहिंसा का अर्थ है प्रेम। गान्धीजी का कहना था कि प्यार के बदले में विद्रोह तो मिल ही नहीं सकता। इसी प्रेम-पूर्ण व्यवहार का विकास करना उनके जीवन का उद्देश्य रहा था। उसी का परिणाम था कि जब उनके गोली लगी थी, तब भी उनके मुख से हे राम! ही निकला था। अपनी हत्या करने वाले के प्रति भी उनके अन्दर विद्वेष के भाव नहीं आ पाए थे। उनके लिये सारा संसार राम मय था। इसी लिये वह सबसे प्रेम करते थे। यही उनकी अहिंसा थी।

गान्धीजी ने अपनी आत्म कथा में लिखा है कि मैं एक गाना गाया करता था—जो सप्तम एडवर्ड के राज्यारोहण के अवसर पर बनाया गया था। उसकी दो पंक्तियां मुझे अखरी—

उसके शत्रुओं का नाश कर, उनकी चालों को विफल कर। मैंने यह कठिनाई डा० बूथ के सामने पेश की। उन्होंने भी स्वीकार किया कि अहिंसावादी को यह गाना शोभा नहीं देता। जिन्हें हम शत्रु कहते हैं, वे दगाबाजी ही करते हैं यह हम कैसे मान लें। यह हम कैसे कह सकते हैं कि हमने जिन्हें शत्रु मान लिया है वे सब बुरे ही हैं। डा० बूथ भी मेरे इन विचारों से सहमत थे। कहना न होगा कि गांधीजी ने आजन्म अपनी इस अहिंसा का निर्वाह किया!

रौलेट एक्ट बनने के समय से वे समराङ्गण में आए और प्रारम्भ से अन्त तक यही प्रयत्न करते रहे कि राष्ट्रीय-आन्दोलन में, स्वतन्त्रता संग्राम में हिंसा न आने पाने।

गीता की टिप्पणी में आपने लिखा है कि ।'महाभारतकार ने भौतिक युद्ध की आवश्यकता नहीं, उसकी निरर्थकता सिद्ध की है। विजेता से रुदन कराया है, पश्चात्ताप कराया है और दुःख के सिवाय और कुछ नहीं रहने दिया। आगे चलकर वे कहते हैं कि बिना ईश्वर रूप हुए मुझ को चैन नहीं। ईश्वर रूप होने के प्रयत्न का ही नाम सच्चा और एक मात्र पुरुषार्थ है......इत्यादि"।

गांधीजी के यह विचार बहुत पुराने थे। सन् १९२९ में जिस समय उन्होंने गीता पर यह 'अनासक्ति योग' लिखा था, उस समय तक तो सत्य और अहिंसा का पालन करते हुऐ इन्हें लगभग ३५ वर्ष होचुके थे। सत्य और अहिंसा के प्रति इसी प्रगाढ़ विश्वास का प्रतिफल था कि वह अन्य राजनीतिज्ञों की तरह राजनीति से धर्म को भिन्न नहीं मानते थे। बिना धर्म के राजनीति उनके लिये अनीति थी। वह उसे धोखेबाज़ी कहते थे। उनका निश्चत मत था कि बुरे कामों का अच्छा फल कभी नहीं हो सकता। पाप से पुण्य नहीं हो सकता। आम का पौधा लगा कर ही आम खा सकते हैं। जैसा कारण वैसा कार्य।

रचनात्मक कार्य

इस तरह सत्य और अहिंसा को लिये हुये वह बराबर स्वतन्त्रता संग्राम करते रहे। इस बीच में इन्हें एक बार फिर दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा परन्तु वहाँ से शीघ्र ही वापिस आगये। इस स्वतन्त्रता संग्राम में न मालूम इन्हें कितनी ही बार जेल जाना पड़ा। कितनी यातनाएँ भोगनी पड़ी थीं। खैर जो भी हुआ, इनका ध्यान सदैव सत्यानुभव की ओर ही लगा रहा। चर्खा, खादी, इनके लिये अहिंसा व सत्य के प्रतीक थे। शूद्रों, दलितों, निर्बलों, असहायों आदि की सेवा सुश्रुषा करना परमात्मा को प्राप्त करने की चेष्टा थी। इतना सब होने पर, इनके विचार से स्वतन्त्रता तो आही जावेगी। इन्हीं सब

बातों को ध्यान में रखकर वह कांग्रेस वालों को सदैव ही रचनात्मक कार्य करने का आदेश देते रहते थे। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, नमक कानून तोड़ना तथा अन्य असहयोग आन्दोलन सब उसी एक उद्देश्य की पूर्ति के साधन थे।

गांधी जी का धर्म

गांधीजी ठेठ हिन्दू थे। उनके धर्म का रूप वही हो सकता था जो युक्तियुक्त हो तथा अन्तःकरण में बैठ सके। उनका हिन्दुत्व सच्चा भागवत् धर्म था जो धर्म दूसरे धर्म का विरोध करे, वह धर्म नहीं, कुधर्म है; इसी कारण वे सच्चे हिन्दू होने के साथ ही एक पक्के मुसलमान भी थे और पक्के ईसाई भी। वे एक सच्चे सिक्ख भी थे, और एक कट्टर पारसी भी। वह वास्तव में सब कुछ थे। उन्हें सारे संसार में वही एक सत्य स्वरूप दिखाई देता था। चाहे उसे राम कहें अथवा रहीम।

वैष्णव जन तो तेणें कहिए जे पीर पराई जाणें रे। जो दूसरों का दुख समझे, वही वैष्णव है।

उसे चाहें कुछ कह लें। वह सब कुछ है। उनका तो यह निश्चित मत, पिछले ही दिनों में इस देश में साम्प्रदायिकता का विषविषम रूप से फैल जाने से हो गया था। उस समय भी वह मुसलमानों से द्वेष नहीं करते थे। मुसलमानों के प्रति प्रेम के कारण ही उन्होंने दिल्ली में उपवास किया, तथा कलकत्ते में हिन्दुओं को हथियार फेंक देने पर बाध्य किया। इन सब कार्यों को देख कर बहुत से लोग उनके हिन्दू होने में सन्देह करने लग गये थे। बहुत से लोग कहने लगे थे कि गांधी जी तो मुसलमान हैं, वे हिन्दुओं का नाश कराकर रहेंगे। प्रायः इसी साम्प्रदायिकता की विषम भावनाओं के कारण ही उनकी हत्या भी हुई। परन्तु अगर हम ठण्डे दिल से उनके कथनों पर विचार करें तो सहज ही समझ जावेंगे कि वह एक पक्के हिन्दू थे

और इसी कारण वह नोआखाली की आग में कूद पड़े थे। अन्यथा पूर्वी बङ्गाल के हिन्दुओं का राम ही मालिक था। इस सम्बन्ध में उनके निम्न शब्द विचारणीय हैं "हिन्दुओं के शत्रु मुसलमान नहीं, हिन्दू ही हैं। अगर साम्प्रदायिक झगड़े बराबर चलते रहें, तो इस देश से हिन्दू और इस्लाम दोनों ही धर्म मिट जावेंगे। परन्तु हिन्दू लोग याद रखें कि इस्लाम धर्म तो संसार के अन्य देशों में भी है— अतः जीवित बना रहेगा। परन्तु वैदिक धर्म केवल भारतवर्ष में है। अगर वह यहां न रहा, तो कहीं भी न रहेगा। वह सर्वथा को विलीन हो जायगा–आदि" ऐसे हृदय-स्पर्शी शब्द एक सच्चे हिन्दू के अश्रुपूर्ण हृदय से ही निकल सकते हैं!

इन सबके अतिरिक्त उन्होंने कलकत्ते में प्रचलित फूका प्रथा बन्द कराई। उन्होंने यह प्रण कर लिया था कि जब तक इस देश से फूका प्रथा नहीं उठ जावेगी तब तक वह न तो गाय का दूध पियेंगे और न यज्ञोपवीत ही धारण करेंगे। सचमुच उनके हृदय में एक सच्चे हिन्दू का परमात्मा आकर बैठ गया था।

अन्तिम दिन—महायात्रा

स्वतन्त्रता-संग्राम की सदैव बागडोर सम्हाले रहने के कारण सबको उपयुक्त एवं सत्य राह बताने के कारण, सबको अपना आत्मीय मानकर प्यार करने के कारण, महात्माजी बापू कहलाने लग गये थे। जो लोग उनसे उम्र में कहीं अधिक बड़े थे, वे भी उनसे बापू कहते थे। उनकी बातें ही कुछ ऐसी थीं।

अन्तिम दिनों में वह नित्य शाम को सामूहिक प्रार्थना करते थे। इसमें देश-विदेश के, विभिन्न प्रकार के स्त्री-पुरुष सभी इकट्ठे होते थे। यहीं पर सामयिक विषयों की चर्चा हो जाया करती थी। उसे चाहे

पं० मोतीलाल नेहरू के साथ मतभेद था। उस समय महात्मा जी का ही काम था जो जवाहर को समझाकर अपने पक्ष में कर सके थे। अन्तिम यात्रा के समय स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू अपने प्यारे पुत्र जवाहर को बापू के ही हाथों में सौंप गये थे।

वंश—परिचय, जन्म तथा बाल्यकाल

पं० जवाहर नेहरू काश्मीरी कौल ब्राह्मण हैं। लगभग २०० वर्ष पहिले इनके कुटुम्ब के पूर्वज दिल्ली में आकर बस गये थे। दिल्ली के बादशाह फ़र्रुखशियर ने इनके लिये चांदनी चौक के पास वाली नहर के किनारे एक बढ़िया महल बनवा दिया था। तब से लोग इन्हें 'कौल नेहरू' कहने लगे। दिल्ली की नहर ने इन्हें 'नेहरू' परिवार कर दिया। कालान्तर में लोग 'कौल शब्द' को भूल गये और ये केवल नेहरू करके प्रसिद्ध हो गये। इसी वंश में पं० गंगाधर नेहरू हुए। यह दिल्ली के कोतवाल थे। सन् १८५७ के ग़दर में इन्हें दिल्ली छोड़नी पड़ी। वहां से ये लोग आगरा आ गये और शान्तिपूर्वक रहने लगे। ता० ६ मई सन् १८६१ को स्वनाम धन्य स्व० पं० मोतीलाल नेहरू का जन्म हुआ। दुर्भाग्यवश जन्म के दो महीने पहिले ही इनके पिता जी का देहान्त हो चुका था। अतः इनके बड़े भाइयों ने ही इनका लालन-पालन किया था। आगरा से उठकर जब हाईकोर्ट इलाहाबाद गया, तब ये लोग भी इलाहाबाद ही जाकर बस गये, क्योंकि इनके बड़े भाई स्व० पं० नन्दलाल जी वक़ालत करते थे। प्रयाग में पहुंचकर पं० मोतीलाल जी ने भी अपने बड़े भाई के साथ वकालत शुरू की। अधिक से क्या! मोती की आब निखर पड़ी। लक्ष्मी मानो इन पर मुग्ध हो गई थी। केवल संयुक्तप्रान्त ही नहीं, बल्कि सारे देश में इनकी वकालत की तूती बोलने लगी।

इन्हीं पं० मोतीलालजी की दूसरी पत्नी स्वर्गीया स्वरूप रानी नेहरू

की पवित्र एवं भाग्यशालिनी कोख से हमारे हृदयहार पं० जवाहरलाल नेहरू का माघ कृष्ण सप्तमी सम्वत् १९४६ तदनुसार ता० २४ नवम्बर सन् १८८९ के दिन जन्म हुआ। उन दिनों यह लोग इलाहाबाद के मीरगंज मोहल्ले में रहते थे। आनन्द की लहर से सारा परिवार पुलकित हो उठा। दिल खोल कर आनन्दोत्सव मनाया गया।

बचपन इनका राजसी ठाट-बाट का था। भाग्यशाली पिता की सन्तान होने के कारण इनके दुलारों का क्या कहना था? इनकी देख-भाल करने के लिए दाईकला में उत्तीर्ण अंग्रेज दाइयां नौकर थीं। अब आप सहज ही अनुमान कर लीजिए कि इनका बाल्यकाल कैसे बीता होगा। इन्हीं सब ठाट-बाटों को देख कर हमारे देश में जवाहरलाल जी की रहन-सहन के बारे में अनेक मन-गढन्त बातें भी प्रचलित हैं। कोई-कोई कहते हैं कि इनके कपड़े पेरिस से धुल कर आते थे।

इन दाइयों के द्वारा लालन-पालन होने के कारण इन पर बचपन से ही अंग्रेज़ियत का रंग चढ़ने लगा। पिता जी तो अंग्रेज़ी रंग में पहिले से ही रंगे हुए थे। इतना होते हुए भी पं० मोतीलाल जी ने इन्हें केवल दाइयों तथा अध्यापकों पर नहीं छोड़ा। वह स्वयं भी इनकी देख भाल करते रहते थे। पं० मोतीलाल जी का स्वभाव उग्र था। तनिक सी भूल होने पर वह अपने पुत्र की तुरन्त पीठ-पूजा कर देते थे। अतः जवाहरलाल अपने पिता से बहुत डरते थे। कहने का सारांश यह है कि इतने लाड़-प्यार में पाले जाने पर भी बिगड़ नहीं पाए। इसी बात पर आश्चर्य सा प्रकट करते हुए पं० जवाहरलाल जी ने स्वयं भी अपनी 'आत्मकथा' में इस ओर संकेत किया है—"समृद्धिशाली माता-पिता के पुत्र, विशेषकर भारतवर्ष, में प्रायः बिगड़ जाते हैं। और जब वह कहीं इकलौता बेटा हो, तब तो 'गिलोय और नीम चढ़ी' ही समझिए। खास कर तब, जब कि पहिली ११ वर्षों तक

पिता के और कोई सन्तान न हो और वह इकलौता पुत्र घर में इकलौता बालक भी हो ...."इत्यादि। हमारे विचार से स्वर्गीय प० मोतीलाल जी की देख-रेख के कारण, तथा हमारे सौभाग्य के कारण श्री जवाहरलाल 'जवाहर' बन गये। अस्तु!

छोटेपन में प्यार के कारण जवाहर लाल को सब लोग 'नन्हा' कह कर पुकारते थे। कभी कभी नन्हा बड़े मज़े करता था। जब रोने की उमंग आती, तो रोने लगता और जब कोई रोने का कारण पूछता तो फिर ज़ोर ज़ोर से पूछने वाले का नाम ले ले कर रोने लगता और कहता, इसने मारा है।" जब कोई दूसरा पूछता, तो उसे ही मारने वाला बताने लग जाता। इस तरह जैसे जैसे पूछने वाले बदलते, मारनेवाले का नाम भी बदल जाता!

इस प्रकार जवाहरलाल आनन्द भवन के वैभव और विलास के बीच पल रहे थे। उन दिनों का आनन्द-भवन पश्चिम के मोहक वातावरण में मुग्ध था। विलास जवानी पर पहुँच चुका था। इतना सब कुछ होने पर भी बचपन से ही चरितनायक गम्भीर और शान्त थे और जो बात उन्हें ठीक जँचती वह करके ही मानते थे।

६ से १२ वर्ष तक घर पर ही इनकी शिक्षा हुई। पढ़ने के साथ खेल कूद का इनको शौक़ था। घोड़े पर चढ़ना, फुटबाल, टेनिस और तैरना इनके नित्य के विनोद थे। १२ वर्ष की अवस्था में प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट की एकड़ी बुक्स एवं गवर्नमैण्ट हाई स्कूल प्रयाग के तात्कालिक प्रधानाध्यापक श्री गोर्डन इनके मुख्य शिक्षक नियुक्त हुए। श्री बुक्स एक स्वतन्त्र एवं विद्वान् प्रचारक तथा भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे। बुक्स साहब का अधिकांश समय आध्यात्मिक चिन्तन में जाता था। बालक को सदाचारी बनाने की ओर उनकी विशेष रुचि थी। उन्होंने जवाहर जी को मांस खाने की मनाई की,

उनका सिनेमा देखना छुड़ाया---इत्यादि। मोतीलाल जी को ये बातें न रुचीं। उन्होंने ब्रुक्स साहब को अलग कर दिया। अब जवाहरलाल जी फिर पाश्चात्य रहन-सहन के प्रवाह में बहने लगे।

विलायत यात्रा व बैरिस्ट्री

सन् १९०४ में पं० मोतीलाल जी सपरिवार इंगलैण्ड गये। वहां के प्रसिद्ध विद्यालय हैरो में इनका नाम लिखा दिया गया। यहां इन्होंने अनेक राजनीति विशारदों एवं विचारकों से शिक्षा पाई। यहाँ इनके सहपाठियों में इस देश के अनेक प्रसिद्ध लोग थे, जैसे कपूर्थला के युवराज, महाराज गायकवाड़ के पुत्र स्व० शाहसुलेमान आदि। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद जवाहरलाल कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में भर्ती हुए और जन्तु विज्ञान (Zoology) वनस्पति विज्ञान (BOtany) एवं रसायन शास्त्र (Chemistry) में सम्मानसहित सन् १९०९ बी० ए० पास हुए। इनकी असाधारण योग्यता से कालेज के अध्यापकों व संचालकों ने सन्तुष्ट होकर बिना परीक्षा लिये ही इन्हें एम० ए० आनर्स का सार्टीफिकट दे दिया। कालेज के इनके सहपाठियों में स्व० शेरवानी, एम० ए० खाजा, डा० महमूद डा० किचलू आदि हैं। संयोग की बात, इनके अधिकांश सहपाठी आगे चल कर असहयोग आन्दोलन में इनके सहयोगी हुए। कालेज की शिक्षा समाप्त करने के बाद यह लन्दन के 'इनरटेम्पुल' में भरती हुए और सन् १९१२ में इन्होंने बैरिस्ट्री की उपाधि प्राप्त कर ली।

भारतवर्ष वापिस

बैरिस्टर के रूप में पंडित जवाहरलाल जी भारतवर्ष वापिस आ गये। नरमदल के नेताओं का पं० मोतीलाल जी के यहां तांता लगा रहता था। उनके विचारों का इन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

सन् १९१२ की पटना कांग्रेस में यह शामिल हुए और तब से बराबर कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेते रहे। यह केवल राजनीति के विद्यार्थी की हैसियत से उनके विचारों का अध्ययन ही करते थे। प्रत्यक्ष भाग नहीं लेते थे।

विलायत में दीर्घकालीन प्रवास ने जवाहरलाल जी में बड़ा परिवर्त्तन कर दिया। अँग्रेज़ों के देश प्रेम और अदम्य साहस की वह प्रशंसा करते थे, और अब भी करते हैं, किन्तु उनकी अहमन्यता पालिसी अर्थात् धूर्तता, स्वार्थपरायणता से उन्हें चिढ़ थी। पहिले तो वे इन बातों से चिढ़ते ही थे। बाद में विद्रोही होकर भारत में अँग्रेजी शासन को अवांच्छनीय ही समझने लगे और उसे मिटाकर ही चैन लिया। सन् १९१२ से लेकर सन् १९२० तक यह अपने पिता जी के साथ बैरिस्ट्री करते रहे, किन्तु उसमें इनकी विशेष रुचि न थी।

विवाह

इन दिनों जवाहरलाल जी एक चपल विद्यार्थी थे। फरवरी सन् १९१६ में बसन्त पंचमी के दिन दिल्ली के पं० जवाहरलाल कौल की पुत्री कुमारी कमला के साथ बड़ी धूम-धाम के साथ इनका विवाह हुआ। विवाह के बाद कई महीने तक आप अपनी नवपरिणीता पत्नी के साथ काश्मीर की सैर करते रहे। सन् १९१७ में पुत्री इन्द्रा का जन्म हुआ। सन् १९२४ में एक पुत्र भी हुआ था, पर वह जन्म के तीसरे ही दिन जाता रहा।

राजनीति में पदार्पण

सबसे पहिले डा० बेसेण्ट के होमरूल आन्दोलन में आपने काम किया। फिर १९१९-२० में अवध के किसानों में काम किया। फिर तो असहयोग की लहर दौड़ जाने पर यह भी समराङ्गण में कूद पड़े।

पं० जवाहरलाल नेहरू-हमारे हृदयहार

सन् १९२९ का समय हमारे जवाहरलाल के जीवन में सबसे
अधिक महत्वपूर्ण वर्ष समझी जानी चाहिए। सन् १९२९ में नागपुर
में होने वाले मज़दूर कांग्रेस के यह अध्यक्ष हुए। उन्हीं दिनों इन्होंने
भारतीय स्वाधीनता-संघ स्थापित किया। यहां बता देना अनुचित न
होगा कि सन् १९१३ से लेकर सन् १९२९ तक बराबर यह कांग्रेस
के प्रधान मन्त्री रहे। सम्भवतः इतना सफल मन्त्री कांग्रेस को कभी
नहीं मिला, न इनसे पहिले और न इनके बाद में।

सन् १९२९ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। पंजाब
निवासियों के हृदय में जलियांवालेबाग़ के घाव हरे हो आए। गणना
के अनुसार ३१ दिसम्बर सन १९२९ को रात के १२ बजे वह वर्ष
पूरा होता था। अतः ज्योंहीं घड़ी ने १२ का घण्टा बजाया त्योंही
जवाहरलाल ने राष्ट्रपति की हैसियत से पूर्णस्वाधीनता का प्रस्ताव
सर्वसम्मति से पास करके अंग्रेजी शासन को चुनौती देदी।

रावी नदी का वह तट, जहाँ पर भारत ने एक स्वर से पूर्णस्वा-
धीनता की माँग की घोषणा की थी, हमारा एक तीर्थ है। यहाँ प्रति-
वर्ष १ जनवरी के दिन मेला लगा करेगा और हमारे देश-वासी अपने
अमर नेताओं के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित किया करेंगे। जिस स्वतन्त्रता
के प्रस्ताव को लाहौर कांग्रेस ने सर्वसम्मति से पास किया था,
उसको देश के कोने कोने में प्रतिज्ञा के रूप में दुहराने के लिये २६
जनवरी का दिन निश्चय किया गया। कांग्रेस ने निश्चय कर लिया
था कि अब तिरंगे झण्डे के नीचे स्वतन्त्रता-संग्राम में सर्वस्व होम देने
के लिये वह तैयार है। कांग्रेस ने अहिंसात्मक सत्याग्रह छेड़ देने का
निर्णय करके उसका सारा भार महात्मा गांधी के उपर छोड़ दिया।

सन् १९३० की महात्मा जी की डण्डी यात्रा प्रसिद्ध है। उन दिनों
"नमक कानून तोड़ दिया। सरकार का मुँह मोड़ दिया" के नारे

जवाहरलाल जी का व्यक्तित्व

इस ससार में कोई भी व्यक्ति किस प्रकार बड़ा होता है, इस सम्बन्ध में अँग्रेज़ी में एक कहावत है, जिसका भाषानुवाद इस प्रकार है—"कुछ व्यक्ति तो जन्म से ही महान् होते हैं. कुछ अपनी कर्त्तव्य-परायणता तथा कर्म-सौन्दर्य के कारण महानता प्राप्त कर लेते हैं तथा कुछ के ऊपर महानता लाद दी जाती है"। हमारे विचार से हमारे चरित नायक के ऊपर तीनों ही कारण लागू हैं। इनका जन्म प० मोतीलाल नेहरू जैसे पिता के घर हुआ—उस घर में जिस पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की कृपा थी। पं० मोतीलाल जी स्वंय भी किसी से कम न थे—क्या द्रव्य में, क्या योग्यता में और क्या सार्वजनिक जीवन में ? फिर पं० जवाहरलाल जी ने स्वंय भी महानता की कमाई की। इतने आराम के जीवन को ठोकर मार कर उन्होंने कांटों की सेज अपनाई। आज तक वह उसी त्याग, तपस्या और सेवा के संघर्ष में तल्लीन हैं। रोटी कमाने का संघर्ष नहीं, जीवन की कठिनाइयों से भिड़ने का संघर्ष, अपने देश को ऊपर उठाने का सघर्ष। इसके अतिरिक्त इनके ऊपर सदैव ही स्व० बापू का हाथ रहा। बापू के साथ यह वैसे ही थे, जैसे राम के साथ लक्ष्मण, अथवा कृष्ण के साथ अर्जुन। अगर हम इन दोनों महान व्यक्तियों को नर और नारायण कह दें, तब भी अनुचित न होगा। इनकी माता स्वरूप रानी ने इन्हें महात्मा जी के हाथों में ऐसे ही सौंपा था, जिस तरह देवी सुमित्रा ने राम-वन-गमन के समय अपने प्यारे पुत्र लक्ष्मण से कहा था, कि अगर राम और सीता वन को जाते हैं, तो इन महलों में तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं, और इन्होंने भी अपनी माता के वचनों को, अपने कर्त्तव्य-पथ को उतनी ही दृढ़ता के साथ निभाया। इस स्वतन्त्रता संग्राम के बीच इनका घर छूटा, द्वार छूटा, पिताजी गये, माताजी गईं, पत्नी गई, परन्तु देश प्रेम की उमंग के

व्युत्पन्न विद्वान्, भारी हथौड़े-सी चोट करने वाली उनकी शैली और छेद कर टुकड़े-टुकड़े कर देने वाली उनकी अभिव्यक्ति शक्ति हम सबके लिये ईर्षा की वस्तु है। वह एक पहुंचे हुए राजनीतिज्ञ और सूक्ष्मदृष्टा देश भक्त हैं। उनकी सरलता, सच्चाई और आत्मोत्सर्ग जन साधारण की ज़बान पर हैं।"

इसी तरह इनकी बुद्धि के विषय में हमारे सरदार वल्लभभाई ने एक बार यह शब्द कहे थे, हममें एक व्यक्ति—राजा जी हैं जिसका दिमाग़ सुलझा हुआ है, और जो स्वछता के साथ विचार करता है।" जो भी हो, इतना अवश्य है कि स्व० बापू के विचारों व कथनों की व्याख्या करते समय, उनका स्पष्टीकरण करते समय, सब लोग राजा जी की ही ओर देखते थे। प्रायः ऐसा हुआ है कि महात्मा जी के विचारों के प्रचार करने का भार इन्हीं के कन्धों पर रखा गया है, तथा इस सम्बन्ध में विचारों का आदान-प्रदान तथा पिष्ट-पेषण हमारे 'राजा जी' ही करते रहे हैं।

इतना सब होते हुए भी इनमें कोई विशेष आकर्षण नहीं। मेरा अभिप्राय उनकी शक्ल—सूरत से है। वह एक दुबले-पतले नाटे से व्यक्ति है। उनका सफाचट मुड़ा हुआ सिर है। उनका चेहरा-मोहरा भारतीय ब्राह्मणों के अनुरूप हैं। पहिली बार उन्हें देख कर आप उन्हें भूल जायेंगे। उनमें कोई ऐसी बात नहीं, जो देखने वाले को असाधारण प्रतीत हो। पर नहीं इसमें सब कुछ है। उनकी आकृति को यदि आप ध्यान पूर्वक देखें, तो पता पड़ जायेगा कि वह अगाध हैं। उनकी बाज़ की तरह ऊपर उठी हुई नाक, अतल से आपकी ओर यों देखने वाली आंखें, आपके मर्मस्थल में घुस कर सब कुछ देख डालेंगी। यदि आप उन्हें इस तरह से देखने लगेंगे, तो फिर कभी भी उन्हें न भूल सकेंगे—चेष्टा करने पर भी। उनके

ग़द्दार तक कह डाला। इन्हें कांग्रेस तक छोड़नी पड़ी। पिछली बार मद्रास के प्रधान मन्त्री न बन सके। परन्तु आज यह हमारे गवर्नर जनरल बने हुए हैं। यह उच्च पद आज तक किसी भी भारतीय लाल को प्राप्त न हुआ है और न भविष्य में ही प्राप्त ही हो सकेगा।

राजा जी में प्रारम्भ से ही प्रतिभा का प्रकाश दिखाई देने लगा था। स्कूल और कालेज में यह तेज लड़कों में थे। तर्क करने की शक्ति इनमें शुरू से थी। अतः रुचि के अनुकूल इन्होंने वकालत पास की। परीक्षा पास करते ही इन्होंने सलेम में वकालत शुरू कर दी। पहिले ही दिन से इनकी वकालत चल निकली। थोड़े दिनों तक सलेम में वकालत करने के बाद यह मद्रास चले आये। यहाँ यह हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। राजा जी यहाँ के प्रथम श्रेणी के वकील थे। इनकी औसत आय पांच हज़ार रुपये महावार थी।

सार्वजनिक जीवन

जनता की सेवा करने की इच्छा इनमें शुरू से ही थी। यों कहिये कि बचपन से ही थी। वकालत शुरू करते ही नागरिक प्रश्नों में दिलचस्पी लेने लगे और थोड़े ही दिनों बाद स्थानीय चुंगी के चेयरमैन हो गये। चेयरमैन के पद से इन्होंने अपने नगर में अनेक सुधार किये। इन्होंने समाज-सुधार के अनेक कार्यों में हाथ बटाया। पाठक, यह न भूल जायें कि उन दिनों भारतवर्ष में इतनी कट्टरता थी कि समाज की रूढ़ियों के सामने मुँह खोलना खतरनाक था—एक अपराध था।

राजनीति में आगमन

सन् १९१७ में 'होमरूल' आन्दोलन नें भारतवर्ष में एक नई जान डाल दी थी। राजाजी उस लहर से कैसे अछूते रह सकते थे?

वैसे-वैसे अपने गृहस्थजीवन को धन्य बनाते गये और बापू सच्चे 'बापू' बन गये।''

(डा० सुशीला नय्यर)।

बा ने सीता के सतीत्व को भावना-जगत से निकाल कर व्यवहार के धरातल पर खड़ा कर दिया। उन्होंने अपने व्यवहार से बता दिया कि राम की सीता केवल कल्पना में रहने वाली स्त्री नहीं, वह हम तुम में से ही एक हैं। प्रत्येक स्त्री सीता हो सकती है और वह है। बात यह है कि प्रेम के लिए अपने को भूल जाने की अचूक तत्परता ही प्रेम की शुद्धता की कसौटी है। कहना अप्रासंगिक न होगा कि बा गांधीजी की प्रेम-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अमर हो गईं। कहने का सारांश यह है कि "अगर हमें यह जानना है कि गांधी जी के विश्व-व्यापी सिद्धान्तों का निर्माण कैसे हुआ तो हमें चुपचाप कस्तूर बा के इतिहास में डुबकी लगानी चाहिए" [श्रीरामकृष्ण]

बापू जी के जीवन का प्रवाह त्याग, वैराग्य और सन्यास की ओर जोरों से बहा जा रहा था। बा ने उसमें कोई रुकावट नहीं डाली। उसको बहने के लिए सदैव ही इष्ट मार्ग दिया। जहाँ कहीं भी आवश्यकता समझी वहां नम्र सूचना के रूप में बांध बांध कर, सविनय प्रतिकार के रूप में उचित रुकावटों की दीवारें खड़ी की। ऐसा उन्होंने इसलिये किया कि वह प्रवाह केवल अनुकूल दिशा में ही होकर जाये। इस प्रकार बा ने उन्हें सदैव ही अनिष्ट दिशा में जाने से रोका। इस प्रकार बा ने नम्रतापूर्वक समझाकर, सौम्य आग्रह द्वारा, तथा निरुपाय हो जाने पर अपने आसुँओं द्वारा बापू को कभी भी कर्कश नहीं बनने दिया। बा के कारण ही बापू इतने सरस और प्रेम पूर्ण बने रहे—हमारे विचार से यह कह देना अनुचित न होगा।

×

भारतीय ढांचा छोड़कर आगाखां महल की ऊँची भयावह दीवारें मेरे मन में बड़ी उदासी उत्पन्न करती हैं"।

बा समझ रही थीं कि हज़ारों नर-नारी सरकारी जेलों में भेड़-बकरियों की तरह जेलों में ठूंस दिये गये थे। रात दिन उनकी यही कामना बनी रहती थी कि सरकार चाहे उन दोनों को आजन्म क़ैद रखे, परन्तु दूसरों को मुक्त कर दे।

बा को जेल में हृदय का रोग लग गया था। महादेव भाई की मृत्यु के बाद तो वह बढ़ता ही गया। दिसम्बर सन् १९४३ में बा की बीमारी ने भीषण रूप धारण कर लिया। २० फरवरी सन् १९४४ को गुर्दों ने काम करना छोड़ दिया। परन्तु मनुष्यता के विरोधी ऐमरी और चर्चिल ने उन्हें न छोड़ा। अब उन्हें निमोनिया भी हो गया। बा ने दवा-पानी लेना भी छोड़ दिया। वह केवल गंगा-जल के लिए ही मुँह खोलती थीं।

गांधी जी बराबर बा की सेवा करते रहे। उस हालत में भी गांधी जी को पास देख कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। आखिर कार वह क्षण आ ही गया। २२ फरवरी सन् ४४ को सायंकाल ७ बजकर ३५ मिनट पर, लगभग ७५ वर्ष की अवस्था में, सशस्त्र संतरियों के पहरे से छूट कर वह परम पिता परमात्मा की शरण में चली गईं। आज वे वहां अपने जन्म-जन्म के स्वामी हमारे बापू के साथ विराजमान हैं। आज हम करोड़ों बच्चे अपनी बा से बिछुड़ गये हैं। हमारी गाथाओं, हमारे गीतों और हमारे इतिहास की वीरांगनाओं की मण्डली में वे आज अपने सिंहासन पर देदीप्यमान हैं। धन्य है वह आगाखां का महल जो राष्ट्र की अनमोल याद को समेट कर इतिहास में अमर हो गया है।

: ५ :

सरदार वल्लभ भाई पटेल—

भारत के लौह-पुरुष

भारतवर्ष के किसानों की आशा सरदार वल्लभ भाई पटेल के बारे में जोना वेली की ये पंक्तियां सटीक ही बयान हैं :—

Even to the dullesh peasant standing by,
who fasten'd still on him a wondering eye,
he sumed the master spirit of the land"

वल्लभ भाई पटेल कांग्रेस की संगठनात्मक प्रतिभा और शक्ति के प्रतीक हैं। नागपुर, बोरसद बारडोली उनकी दृढ़ सैनिकता—तथा उनके नियन्त्रण के आज भी गाने गाते हैं। वह भारत के लौह पुरुष हैं तथा स्व: मौलाना शौकत अली के शब्दों में "नाह़ से ढके हुए

ज्वालामुखी है।" सन् १६२१ ई० में जनता को अपना परिचय देते हुए वल्लभभाई ने स्वयं कहा था:—

"मैं छैल-छबीला रसिया था। राजनीति में भाग लेने से ताश खेलना हज़ार गुना अच्छा समझता था। मुझे इस मक्कारी और मसखरापन के व्यापार से घृणा थी। सहसा इस क्षेत्र में गांधी जी प्रकट हुए। उन्होंने चमत्कार ही तो किया। मेरी काया पलट गई।" सरदार साहब के उक्त कथन में ही इनके जीवन का सम्पूर्ण रहस्य छिपा पड़ा है। इस कथन के १२ वर्ष बाद वह हमारे राष्ट्रपति बने और सत्याग्रह-सेना का नेतृत्व करने में अद्वितीय सफलता को प्राप्त हुए।

जन्म तथा वंश-परिचय

वल्लभभाई पटेल को एक सैनिक जैसी दृढ़ता अपनी परम्परा से एक विरासत के रूप में मिली है। गुजरात में लवा और कंदवा कुरमी जाति की दो उपजातियां हैं। ये लोग अपने को क्रमशः लव और कुश के वंशज बताते हैं। ये दोनों जातियाँ अपनी वीरता और अपने साहस के लिए प्रसिद्ध हैं। आदमी को मार डालना तो ये लोग गाजर और मूली को काट डालना ही समझते हैं। वल्लभभाई लवा उपजाति के हैं। गुजरात के पेटनाद ताल्लुक का करमसद एक गांव है। इसी पवित्र भूमि में करमसद गाव में—श्री ज्वेरभाई के घर ३१ अक्टूबर सन् १८७५ ई० के दिन हमारे लोह पुरुष का जन्म हुआ था। इनके पिता जी एक साधारण आर्थिक स्थिति के व्यक्ति थे। वह कृषि करते थे। परन्तु वह साहस और वीरता में बहुत बढ़े—चढ़े थे। झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई के बुंदेलों के साथ शामिल होकर इन्होंने सन् १८५७ के ग़दर में बड़ी निर्भीकता के साथ अंग्रेज़ों से लड़ाई लड़ी।

इन्हें ५० पौण्ड की छात्रवृत्ति मिली और चार टर्म की फ़ीस माफ़ कर दी गई। इनके उत्तरों को पढ़ कर परीक्षकगण चकित रह गये। इनकी प्रतिभा पर मुग्ध होकर एक परीक्षक ने चीफ़ जस्टिस स्काट के नाम इन्हें एक शिफ़ारिशी पत्र दिया था। उसमें लिखा था कि ऐसे योग्य व्यक्ति को न्याय-विभाग में किसी ऊँचे पद पर रखना चाहिए।

विलायत में वल्लभभाई जी का जीवन बड़ा ही सरल था। वहां पर यह केवल पढ़ने में ही लगे रहते थे। किसी खेल, तमाशे, नाटक सिनेमा आदि में कभी भी नहीं जाते थे। वहां पर यह बिल्कुल हिन्दुस्तानी ढंग से रहा करते थे। आश्चर्य की बात है कि बैरिस्ट्री पास करके ही यह भारतवर्ष लौट आये। एक दिन भी यूरोप घूमने देखने आदि के लिए न रुके।

विलायत से लौट आने के बाद इन्होंने अहमदाबाद में बैरिस्ट्री शुरू की। थोड़े ही दिनों में इनकी धाक जम गई। इन्होंने रुपया तो खूब कमाया ही, साथ ही ख्याति भी प्राप्त की। इन दिनों इनका जीवन बड़े ठाट-बाट का था। वह सोलह आनो पाश्चात्य रहन-सहन में सराबोर थे। उनका जीवन एक नवशिक्षित नवयुवक का, ऐशोआराम का, जीवन था। एक बार गुजरात क्लब में इन्होंने स्वयं कहा था, "मैं दुर्गा-पूजा के दिन सैर सपाटे और आनन्द-विनोद में गुज़ारता था। उस दिन मैं मानता था कि इस अभागे देश के निवासियों के लिए यही आवश्यक है कि वे विदेशियों का अनुकरण करें। मैं जो कुछ शालाओं में पढ़ता था, उन दिनों मेरा मन एक ही निष्कर्ष निकाल सका कि "हमारे देशवासी हलके और ना समझ है और हम पर राज्य करने वाले विदेशी हमारे हित-चिन्तक, उद्धार-कर्त्ता और उच्च जीवन के लोग हैं। हमारे देशवासी तो केवल

गुजरात में फैली हुई बेगार-प्रथा को तय करने के लिये गोधरा में एक प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेन्स हो रही थी। गांधीजी इसके सभापति थे। हमारे चरितनायक उसके मन्त्री चुन लिये गये। वल्लभभाई ने इस पद पर रह कर बड़ी ही योग्यता से काम किया। इन्होंने कमिश्नर के नाम एक पत्र लिखा। वह एक तरह का नोटिस था कि यदि सात दिन के अन्दर उत्तर न आजायेगा तो हाईकोर्ट के फैसले के आधार पर यह घोषित कर दिया जायेगा कि बेगार प्रथा ग़ैर कानूनी है। सात दिन पूरे होने के पहिले ही कमिश्नर ने वल्लभभाई को बुलाकर बात की और मामले को सुलझाकर शान्त कर दिया। यह समाचार पाकर गांधीजी बहुत खुश हुए और उनके हृदय में वल्लभभाई को अपनाने के भाव अंकुरित होने लगे।

सत्याग्रह में प्रवेश

चम्पारन से लौटने के बाद गांधीजी ने खेड़ा का सत्याग्रह छेड़ा। एक दिन गांधीजी ने पूछा "मेरे साथ खेड़ा चलने को कौन तैयार है?" उत्तर में हमारे सरदार का नाम पहिला था। बस उसी दिन से यह रणक्षेत्र में कूद पड़े। जीवन बदल गया। इस सत्याग्रह के सम्बन्ध में यह गांव २ घूमे। किसानों के घर २ में इन्होंने सत्याग्रह का संदेश पहुंचाया। किसान उठ खड़े हुए तथा सत्याग्रह सफल हुआ। बस इसके बाद ही रौलेट एक्ट बना, जलियां वाला बाग़ हुआ आदि। यह भी अन्दोलन की आंधी में डट गये। तब से लेकर आज दिन तक इन्होंने न मालूम कितने युद्ध किये हैं, न मालूम कितने कष्ट सहे हैं, कितनी बार जेल गये हैं,

शुरू शुरू के दिनों में ही इन्होंने कई एक सत्याग्रहों में संगठन का कार्य किया। इतने सुन्दर संगठन-कर्त्ता थे कि प्रत्येक सत्याग्रह

में विजयी हुये। नागपुर का सत्याग्रह, बोरसद का सत्याग्रह, बारडोली का सत्याग्रह—ये उल्लेखनीय काम हैं। इनमें बारडोली का सत्याग्रह सबसे अधिक महत्व रखता है। वह बारडोली के सरदार कहे जाते हैं।

बारडोली का सत्याग्रह

बारडोली के सत्याग्रह ने ही इन्हें सर्व-भारतीय बना दिया। यह संग्राम सन् १९२७ में लगान के प्रश्न को लेकर प्रारम्भ हुआ था। मालगुजारी में वृद्धि कर दी गई थी। किसानों ने निश्चय किया कि बढ़ा लगान न दिया जाये। लोग वल्लभ भाई के पास पहुंचे। इन्होंने साफ कह दिया—"सिर्फ बढ़ा हुआ लगान रोकने से काम नहीं चल सकता। डरो सत्याग्रह नहीं कर सकते। सब से पहिले अपने दिलों को तोल लो और ज़मीन-जायदाद का मोह छोड़ सको तो सत्याग्रह में पड़ो।"

बाद में भ्रमण करके इन्होंने किसानों को सब तरह तैयार करके सत्याग्रह छेड़ दिया। इस सत्याग्रह की लड़ाई में वल्लभभाई ने अपनी बुद्धिमत्ता, कार्यशक्ति, संगठन शक्ति तथा चतुराई का वास्तविक परिचय दिया। इनके संगठन की चतुराई देखकर भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी इनकी प्रशंसा हुई।

वल्लभभाई के इस सत्याग्रह में लगान वसूल करने वालों की बड़ी दुर्दशा होती थी। उन्हें न कहीं खाना मिलता था और न पीने को पानी। जिस गांव में पहुंचते थे, वही सुनसान दिखाई देता था और घरों पर ताले लटकते दिखाई देते थे। ज़ब्त किये हुए माल को खरीदना तो दूर रहा, उस माल को ढोने वाले मजदूर तक कहीं नहीं मिलते थे। सरकार ने तरह-तरह से अनेक कठोर दमन भी किये,

परन्तु किसानों का साहस कम न हुआ और वे अपने अधिकारों के लिये अड़े रहे।——कहना न होगा कि अन्त में सत्याग्रह सफल हुआ और हमारे चरितनायक विजयी हुए। बस, तब से ही इनकी गिनती देश के बड़े नेताओं में होने लगी।

राष्ट्रपति

इसके बाद इनका रचनात्मक-कार्य प्रारम्भ हुआ। आन्दोलन, गिरफ्तारी, रिहाई—बस यही सिलसिला चलता रहा। सन् १९३१ में करांची में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के यह सभापति चुने गये। सारे देश ने एक स्वर से इन्हें अपना राष्ट्रपति पुकारा। इस समय तक 'पूर्णस्वतन्त्रता' वाला प्रस्ताव पास हो चुका था। उसे कार्यान्वित करने के लिए इनकी संगठन-शक्ति अपेक्षित थी।

व्यक्तित्व

यह तो हम ऊपर बता ही चुके हैं कि यह कैसे दृढ़ निश्चय के आदमी हैं। कहना न होगा कि ऐसे ठाठ-बाट की बैरिस्ट्री को छोड़ कर इस संग्राम के हेतु यह फ़क़ीरी बाना स्वीकार करना भी इनके जीवन का बहुत बड़ा निश्चय रहा होगा। सन् १९३१ में कौंसिल प्रवेश के विरोध में इन्होंने दास और अपने बड़े भाई के भी दांत खट्टे कर दिये थे। और सन् १९३७ में जब कौन्सिल-प्रवेश की बात आई, तो आप कांग्रेस पार्लियामेण्टरी उपसमिति के अध्यक्ष बने। इस पद से आपने बड़ी ही दृढ़ता पूर्वक ८ प्रांतों की कांग्रेस सरकारों का संचालन किया। चुनाव के समय आपने दौरा करके पूरे देश में एक नये ही जीवन की लहर दौड़ा दी थी। अन्य दलों की गर्वोक्तियों का जवाब देते हुए आपने कहा था, "जब कांग्रेस के स्टीम रालर

: ६ :

डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद-विहार के गांधी

श्री राजेन्द्रबाबू महात्माजी के अनन्य भक्तों में से हैं। 'जीवित श्रद्धा और मूर्त्त सेवा' के प्रतिरूप बाबू राजेन्द्र प्रसाद का जन्म सम्वत् १९४१ के अगहन मास की पूर्णमासी तदनुसार तारीख ३ दिसम्बर सन् १८८४ को विहार के सारन जिले के एक प्रतिष्ठित कायस्थ (श्रीवास्तव) परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम मुंशी महादेव सहाय था। वह एक अच्छे जमींदार थे और यह अपने पिता के सबसे छोटे पुत्र थे। वैसे इस परिवार के पूर्वज आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व फतेहपुरसीकरी (आगरा) में रहा करते थे। हमारे चरितनायक पर उनके बड़े भाई स्व० बाबू महेन्द्रप्रसाद का अधिक प्रभाव पड़ा था।

राजेन्द्र बाबू भीतर से महान् हैं, परन्तु ऊपर से अपनी सरलता के कारण कुछ अटपटे से लगते हैं। अगर कोई व्यक्ति इन्हें पहिले से
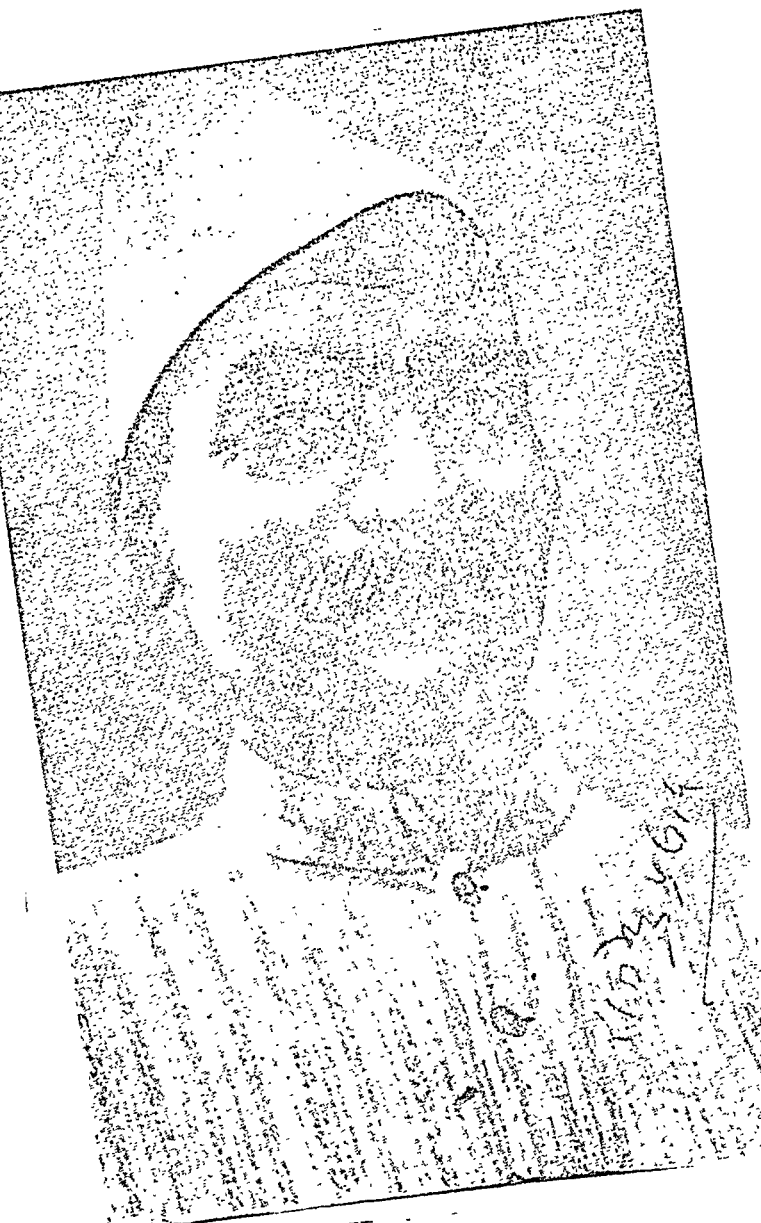
Dr. RAJENDRA PRASHAD

जानता न हो, तो बहुत सम्भव है, वह इन्हें एक साधारण देहाती ही समझने लगे।

जीवन-कथा

सन् १८९३ में यह छपरा स्कूल में भर्ती हुए। 'होनहार बिरवान् के होत चीकने पात' इन पर अक्षरशः लागू होती है। शुरू से ही यह पढ़ने में बहुत तेज़ थे। सदैव ही सर्वप्रथम उत्तीर्ण होते थे। इनकी आरम्भिक शिक्षा एक मौलवी के द्वारा फ़ारसी और उर्दू की थी। सन् १९०२ में इन्होंने कलकत्ता यूनिवर्सिटी की एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की, और उसमें सर्वप्रथम रहे। पाठक, समझलें कि उस समय बंगाल और बिहार दोनों सूबे एक कलकत्ता यूनिवर्सिटी में ही शामिल थे। इण्टर की परीक्षा में भी वही सम्मान प्राप्त हुआ। सन् १८०६ में बी० ए० पास किया—उसमें भी सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। इसके बाद सन् १९०७ में एम० ए० (अंग्रेज़ी) में पास किया और मुज़फ्फरपुर के ग्रीयर कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए। इन्होंने वकालत भी पास करली थी। एक वर्ष अध्यापक रहने के बाद वकालत करने के विचार से कलकत्ता चले गये।

यहां यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि राजेन्द्रबाबू केवल किताबी कीड़े ही नहीं थे। वह खेलने-कूदने में भी बड़े तेज़ थे। वह अपनी फ़ुटबौल टीम के कप्तान थे। पढ़ने के वक्त जी तोड़ कर पढ़ते और खेलने के समय सब कुछ भूल कर खेलते थे। अपने समय का पूरा-पूरा हिसाब रखना, तथा आलस्य व निष्कर्मण्यता में समय व्यतीत न करना ही इनका ध्येय था। इन्हें शुरू से व्याख्यान देने का भी शौक था। स्कूल कालेजों की सभाओं में प्रायः इनके भाषण हुआ करते थे, तथा यह अखबारों में कभी कभी लेख भी लिखा करते थे। इन्हें हिन्दी से शुरू से प्रेम था। हालांकि इनकी मातृभाषा उर्दू

थी परन्तु इतना सब होते हुए भी इन्होंने हिन्दी को ही अपनी मातृभाषा माना और बी० ए० में हिन्दी ही ली। डा० राजेन्द्रप्रसाद ७ भाषाओं के पण्डित हैं। वह ७ भाषाएँ बहुत ही अच्छी तरह लिख व पढ़ सकते हैं।

इस प्रकार एक प्रतिभावान विद्यार्थी की सामान्यतया व्यतीत करने के बाद आपने जीवन में प्रवेश किया। आप क्रमशः अंग्रेज़ी, इतिहास और अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर रहे। बाद को पटना हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। इनकी वकालत खूब चली और हज़ारों रुपये महीने की आमदनी थी। इनका स्वभाव प्रारम्भ से अत्यन्त सरल था और लोक-सेवा के अंकुर इनके भीतर बाल्यकाल में ही उत्पन्न हो चुके थे। अतः यह स्वाभाविक ही था कि इनकी आय का बहुत बड़ा भाग सार्वजनिक कामों में ख़र्च हो जाया करता था। सम्भवतः कुछ लोगों को यह जानकर आश्चर्य हो कि सन् १६२० में जब अपनी वकालत छोड़ कर यह असहयोग आन्दोलन में कूदे, तब उस समय इनके बैंक एकाउन्ट में केवल १५ रु० ही थे। हमारे देश के रत्नों के लिए यह कोई अनहोनी बात नहीं। तब से लेकर आज दिन तक यह बराबर देश सेवा में संलग्न हैं।

लोक-सेवा के भाव

जिन दिनों यह कालेज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उन दिनों बंगाल के दो टुकड़े करने की बात चल रही थी। इसी के विरोध में बंग-भंग आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। राजेन्द्रबाबू ने उसमें तथा स्वदेशी प्रचार के आन्दोलन में खूब भाग लिया—राजनीति की ओर झुकाव शुरू से ही था। जो जागृति बंगाल के नवयुवकों में थी, वह इन्होंने आकर बिहार के नवयुवकों में भी उत्पन्न कर दी।

राजेन्द्रबाबू पटना के विश्वविद्यलय की सीनेट के मैम्बर थे। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में इन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रीय-विश्वविद्यालय—पटना विद्यापीठ की स्थापना की। इसमें लगभग ६५० संस्थाएँ सम्मिलित थी, तथा ६२००० विद्यार्थी पढ़ते थे। हमारे चरित नायक इसके वायसचान्सलर थे। इनके संरक्षण में यहां विद्यार्थियों में राष्ट्रीय विचार-धारा भरी जाती थी। असहयोग आन्दोलन के दिनों में सबसे अधिक स्वयंसेवक इसी संस्था से आये थे। सरकारी-दमन के समय इस संस्था को सबसे अधिक सरकार का कोप-भाजन बनना पड़ा था। इसे अवैधानिक क़रार दे दिया गया। इन्हीं के प्रयत्नों के फल स्वरूप बिहारी छात्र सम्मेलन का प्रथम सफल अधिवेशन स्व० सैयद शुर्फुद्दीन की अध्यक्षता में हो सका था।

इनकी प्रतिभा की ख्याति से स्व० गोखले बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। सन् १६१० में उन्होंने इनको अपने भारतीय-सेवक-संघ (Servants of India Society) में शामिल होने के लिए आमन्त्रित किया इनमें भी गोखले के प्रति बड़ी ही भक्ति थी। यह तुरन्त तैयार होगये। किन्तु बड़े भाई के अनुरोध के कारण इन्होंने अपना विचार बदल दिया उस समय इन्होंने अपने बड़े भाई साहब स्व० महेन्द्र बाबू के नाम एक पत्र लिखा था। उस पत्र से सार्वजनिक सेवा के प्रति इनकी निष्ठा एवं मानसिक झुकाव का पता चलता है। प्रारम्भ से ही इनका जीवन देश-सेवा की ओर चल रहा था, यह इस पत्र से अच्छी तरह स्पष्ट है। उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है। पत्र अंग्रेजी में था। उसका अनुवाद निम्न है।

"भैया, मैं एक भावुक व्यक्ति हूँ। अतः आपसे आमने-सामने बैठकर बात नहीं कर सकता। मुझे एक महत्वपूर्ण एवं उच्चतर आवाहन की अनुभूति हो रही है। कठिनाई के समय आपको यों छोड़

देने में मेरी अकृतज्ञता हो सकती है किन्तु मेरा प्रस्ताव है कि ३० करोड़ भारतवासियों के लिए आप यह उत्सर्ग करें। श्रीयुत गोखले के संघ में सम्मिलित होने में मेरा अपना तो कोई त्याग है नहीं। बुरा या भला मुझे ऐसी शिक्षा का लाभ मिला है कि मैं अपने को प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल बना सकता हूं। मेरी रहन-सहन इतनी सादी रही है कि मुझे आराम के किसी साधन की आवश्यकता नहीं है। मुझे जो कुछ संघ से मिलेगा मेरे लिये पर्याप्त होगा। अतः मेरे लिये इसमें त्याग की कोई बात नहीं है। परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि इसमें आपको कोई त्याग न करना पड़ेगा। आपने मुझ पर बड़ी बड़ी आशाएँ लगा रखी हैं। उन आशाओं का एक क्षण भर में अन्त हो जायगा। किन्तु इस अनित्य संसार में धन, मर्यादा, यश सब का अन्त हो जाता है। ज्यों ज्यों हम धनी होते जाते हैं, त्यों त्यों धन की तृष्णा बढ़ती जाती है। दूसरे लोग समझते हैं कि धनवान् अपने धन को लेकर सुखी है, परन्तु जानने वाले जानते हैं कि आनन्द बाहर से नहीं, हृदय के अन्दर से उत्पन्न होता है। अपने थोड़े से रुपयों को ले कर एक दरिद्र; लाखों रुपये वाले धनिक से अधिक तृप्त है। अतः हमें ग़रीबी से घृणा न करनी चाहिए। संसार के महत्तम व्यक्ति अत्यन्त दरिद्र रहे हैं और प्रारम्भ में उन पर सदा अत्याचार हुए हैं और उनकी उपेक्षा की जाती रही है। आज वे उपहास और अत्याचार करने वाले मिट्टी में मिल चुके हैं और अब कोई उनका नाम भी नहीं लेता है। किन्तु उन उपेक्षित और पीड़ित महापुरुषों की स्मृति लक्ष-लक्ष मनुष्यों के हृदय में प्रकाशित है। यदि मेरे जीवन में कोई महत्वकांक्षा रही है तो यह कि मै अपने देश की किंचित सेवा कर सकूं।

भ में माता की सेवा के अतिरिक्त कोई और महत्वाकांक्षा नहीं है। आज ऐसा कौन सा राजा या रङ्क है जिसका श्री गोखले जैसा प्रभाव, मर्यादा या यश हो? और क्या वह ग़रीब नहीं है?" आज से ३८ वर्ष पहिले लिखे गये इस पत्र में हमारे चरितनायक का

सच्चा स्वरूप जागरूक है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पूर्ण भक्ति या ज्ञान में आत्मा बोल रही हो। हम देखते है कि उनका सम्पूर्ण जीवन इसी त्याग एवं सेवा की आधार शिला पर समाधारित है।

गांधीजी का प्रभाव और राजनैतिक क्षेत्र में आगमन

असहयोग का शंखनाद होने के पहिले राजेन्द्र बाबू का अधिकारी वर्ग तथा सर्व साधारण में, दोनों जगह सन्मान था। इन्हीं दिनों महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से लौट कर आए ही थे। सन् १९१७ में वे चम्पारन के किसानों की दशा देखने के लिए बिहार आए। चम्पारन का सत्याग्रह हुआ। सन् १९१८ में चम्पारन एग्रेरियन ऐक्ट पास हुआ, जिस के द्वारा प्रजा की अधिकांश शिकायतें दूर हुईं। यहीं से गोरों का आतंक कम हुआ, वर्ण-विद्वेष पर आश्रित अंग्रेज़ों के थोथे अहंकार को सदा के लिये मिटा देने का श्रीगणेश यहीं से हुआ। राजेन्द्र बाबू इसी समय गांधीजी के साथ हो लिये और सदैव ही उनके विचारों के अनुरूप कार्य करते रहे हैं। महात्माजी की आत्म-कथा में हमारे चरितनायक के प्रति स्थान-स्थान पर हृदय-स्पर्शी टिप्पणियां भरी पड़ी हैं। यह सदैव ही पूज्य बापू के विश्वासपात्र स्तम्भों में रहे हैं—हालांकि इन्होंने सदैव ही अपने को उनका एक तुच्छ अनुचर ही बताया है। इनके विद्यार्थी-जीवन में जहां इनके अध्यापकों ने इनके लिये ये शब्द कहे थे, "राजेन्द्र बाबू उन विद्यार्थियों में से हैं, जिन्हें अध्यापक कभी भूल नहीं सकते," वहां सार्वजनिक जीवन में इन्हें लोक-सेवा का प्रतीक, देश-वासियों की श्रद्धा तथा सत्याग्रह का सेनानी व भारतमाता का सपूत समझा जाता है। विरुद्धों का सामंजस्य, कोमलता एवं कठोरता का समन्वय, यही लोक-धर्म का सौन्दर्य है। हमारे चरितनायक का जीवन उसी की पूर्ति है।

हमारे चरितनायक को सेवा करने का बाल्यकाल से ही एक व्यसन

सा हो गया था। राजनीति में आजाने पर तो उसने एक सजीव रूप धारण कर लिया। वह गांधी जी के रचनात्मक कार्य-क्रम में जुट गये, और उनकी प्रतिभा जाग्रत हुई। साथ ही उनकी संगठन शक्ति का भी परिचय मिला। वह बराबर सत्याग्रह के समर्थकों में से रहे और कई बार जेल भी गये। बार-बार जेल की यातनाओं के कारण इनका स्वास्थ्य एक दम नष्ट हो गया था और इन्हें दमा का भयंकर रोग हो गया था।

सन् १९३४ की बात है। ये जेल में थे, और इनकी बीमारी असाध्य सी समझी जा रही थी। १५ जनवरी सन् १९३४ को भारतवर्ष में एक भयंकर भूकम्प आया। बिहार-प्रान्त पर उसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। लाखों आदमी बे-घरबार के हो गये। उस भूकम्प के कारण बिहार-वासियों की जो दुर्दशा हुई थी, उसके स्मरण मात्र से आज भी रोमांच हो आता है! होनहार की बात इनका रोग बढ़ता देख कर सरकार ने १७ जनवरी १९३४ को इन्हें भी छोड़ दिया। उन दिनों उनका शरीर एक दम लग चुका था। परन्तु ऐसे लोक-सेवी को चैन कहाँ। इलाज करना तो भूल गये। स्थान-स्थान पर सहायक-संघ स्थापित किये। अपने नाम से एक फण्ड खोला। उसमें लाखों रुपये चन्दा इकट्ठा किया गया। इस प्रकार महीनों तक अथक परिश्रम करके इन्होंने निराशा एवँ अन्धकार में पड़े हुए बिहार को बचा लिया। बस यही से इनकी लोक-प्रियता ने एक सजग स्वरूप धारण कर लिया, और सारे देश ने इन्हें अपना अग्रगण्य नेता माना।

सन् १९३२ में पुरी काँग्रेस के अध्यक्ष चुने गये परन्तु सत्याग्रह आन्दोलन के कारण वह काँग्रेस हो ही नहीं सकी। सन् १९३५ में बम्बई में होने वाली काँग्रेस के अध्यक्ष हुए। इन्हीं की अध्यक्षता में कांग्रेस की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई थी। बाद में सन् १९३९ में

त्रिपुरी कांग्रेस के भी अध्यक्ष हुए थे। चुने तो गये थे वैसे स्व० नेताजी सुभाषचन्द्र बोस। परन्तु कांग्रेस-कार्य-कारिणी से मतभेद होने के कारण उन्हें त्याग-पत्र देना पड़ा था। तब सबने इन्हीं को उस गुरुतर कार्य-वहन के लिये राज़ी किया था। आपके बारे में चम्पारन सत्याग्रह के सिलसिले में पूज्य बापू ने लिखा था कि, "अगर राजेन्द्रबाबू न होते, तो मैं एक क़दम भी नहीं चल सकता था।"

विदेश-यात्रा

हमारे चरितनायक का विचार था कि विलायत जाकर बैरिस्ट्री पास करलें। परन्तु कतिपय कारणों से नहीं जा सके। बाद में सन् १६२८ में एक मुक़दमे के सिलसिले में आप इङ्गलैण्ड गये थे। मुकदमा ख़त्म होने के बाद आपने जर्मनी, फ्रान्स, इटली, हालेन्ड, स्विटज़रलैण्ड आदि देशों का भ्रमण किया और कई एक सम्मेलनों में भाग लिया। उन्हीं दिनों आस्ट्रिया में अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सम्मेलन हो रहा था। राजेन्द्र बाबू भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से उसमें शामिल हुए थे। हमारे चरित नायक विदेशों में भी अपने देश की प्रतिष्ठा, मान मर्यादा आदि का सदैव ध्यान रखते थे। भारत की स्थिति और भारत की स्वतन्त्रता के ऊपर जब जहां अवसर प्राप्त हुआ उसके लिये इन्होंने काफी प्रचार किया।

भारत के स्वतन्त्र होने पर स्वतन्त्र भारत की विधान परिषद के आप सर्व सम्मति से अध्यक्ष चुने गये। तथा केन्द्रीय सरकार के खाद्य मन्त्री भी बनाये गये। बाद में आचार्य कृपलानी के राष्ट्रपति के पद से त्याग-पत्र देने के बाद आपने राष्ट्रपति का पद संभाला। और इस समय विधान परिषद तथा कांग्रेस दोनों के ही अध्यक्ष हैं। ऐसे ही श्रेष्ठ नर रत्नों के हाथों में भारत का भाग्य सुरक्षित है।

: ७ :

श्रीमती सरोजनी नायडू—

भारत-कोकिला

कोकिल के सदृश स्वतन्त्रता-रूपी वसंत संदेश संसार के कोने-कोने में पहुंचाने वाली महिला हमारे संयुक्तप्रान्त गवर्नर सरोजिनी नायडू ही हैं।

आगे चलने के पूर्व हम अपनी चरितनायका की एक कविता उद्धृत कर देना उचित समझते हैं। इस कविता को पढ़ लेने के बाद हम सहज ही समझ जायेंगे कि उनमें हमें, विश्वनारी के, नित्य-नारी के पग-पग पर दर्शन होते हैं। वह महिला है जिसमें मातृत्व, व्यथित और पीड़ित मातृत्व अपनी सन्तति को पुकारता रहता है।

"Tho' you deny the hope of all my being,
Betray my love, my sweetest dream destroy;
Yet will I stake my individual sorrow,
At the deep source of universal joy,
O Fate, in vain you hanker to control,
My frail, severe, indomitable soul."

अर्थात् "चाहे तू मुझे मेरे सम्पूर्ण जीवन की आशा से वंचित कर दे, मेरे प्रेम को छिन्न-भिन्न और मेरे मधुरतम स्वप्न को नष्ट कर दे, फिर भी मैं अपने व्यक्तिगत दुःख को विश्वनाद के गम्भीर स्त्रोत में डुबाकर रहूँगी। ऐ भाग्य! तू मेरी क्षीण, शान्त और अजेय आत्मा पर प्रभुत्व स्थापित करने की व्यर्थ ही चेष्टा कर रहा है।"

इस कविता में मानो इनका समस्त जीवन मुखरित है। उन्होंने संसार में विविध कर्म करते हुए, कष्ट दुःख तथा व्यथा के संसार में विचरते हुए भी भाग्य को चुनौती दी है, "किन्तु किसी तरह भी मेरी आत्मा पर विजय प्राप्त न कर सकेगा।" उन्होंने जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त कर लिया है। वे अब उसे किसी प्रकार म्लान् व मन्द होने देने के लिए तैयार नहीं हैं। विश्वानन्द में अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को डुबा देना ही वास्तविक आनन्द का स्रोत है।

जन्म, बाल्यकाल तथा शिक्षा

बहुत दिन हुए तब इनके पूर्वज ब्रह्मनगर (बंगाल) से आकर हैदराबाद (दक्षिण) में बस गये थे। यहीं १३ फरवरी सन् १८७९ को सरोजिनी देवी का जन्म हुआ था। इनके पिता जी का नाम स्व० डा० अघोर नाथ जी चट्टोपाध्याय था। वह विज्ञान के अच्छे विद्वान थे तथा ब्राह्मणों में इनका अच्छा मान था। उनका अध्ययन विशाल तथा विस्तृत था, साथ ही स्वभाव अत्यन्त ही सरल और मृदुल। डा० अघोरनाथ जी विज्ञान के पुजारी थे, तथा उनमें एक वैज्ञानिक की तन्मयता स्वाभाविक थी। क्या आश्चर्य है कि ऐसे धुरन्धर विद्वान मृदुल स्वभाव व्यक्ति तथा तन्मय अध्ययनशील पिता की पुत्री आगे चल कर संसार की इनी-गिनी कवयित्रियों में गिनी जाने लगी। सरोजनीदेवी आज संसार की प्रथम नौ अंग्रेज़ी में कविता करने वालों की श्रेणी में गिनी जाती हैं। इन्होंने अपने तथा अपने पिता जी के बारे

में स्वयं लिखा है कि, "मेरा विचार है कि समस्त भारतवर्ष में ऐसे थोड़े ही आदमी होंगे, जो विद्वत्ता में मेरे पिता जी से बढ़े-चढ़े हों। मैं समझती हूं उनसे अधिक प्रेमास्पद थोड़े ही लोग होंगे" तथा, "मेरे पिता जी में वैज्ञानिक रहस्यों को जानने की जो प्रबल उत्कण्ठा थी, वही मेरे हृदय में सौन्दर्योपासना की प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुई।"

विलायत से लौटने पर डा० अघोरनाथ जी ने निज़ाम कालेज की स्थापना की और शिक्षा प्रसार में लग गये। उनकी प्रबल इच्छा थी कि सरोजिनी देवी उनकी तरह विज्ञान की पण्डिता बने तथा अंग्रेज़ी की पूर्ण विद्वान् बन जाये। फलतः अंग्रेज़ी सरोजिनी देवी को मातृभाषा के समान हो गई और भारतीय भाषाओं का उनका ज्ञान अधूरा ही रह गया।

सरोजिनी देवी पढ़ने में बड़ी तेज़ थी। १२ वर्ष की ही अवस्था में इन्होंने मद्रास की मैट्रिक परीक्षा पास कर ली थी। इन्हीं दिनों इनके हृदय में कविता करने के भाव अंकुरित होने लगे थे। उन दिनों की बात है, जब इनकी अवस्था केवल ११ वर्ष की थी। एक दिन यह बैठी बैठी गणित का एक प्रश्न हल कर रही थीं। वह हल होता ही नहीं था। बस परेशान हो कर इन्होंने सवाल हल करना तो छोड़ दिया, उसकी जगह कविता करने लगीं। १३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक लम्बी कविता लिखी थी। इसका नाम 'झील की रानी' (Lady of the lake) लिखी थी। इसमें १३०० पद हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने एक नाटक भी लिखा था।

सन् १८९५ में उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिये यह विलायत गईं। वहां इन्होंने किंग्स कालेज (लन्दन) तथा गिर्टन (केम्ब्रिज) में अध्ययन किया। स्वास्थ्य बिगड़ जाने से इन्होंने इटली की यात्रा की

वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य और प्रकाश से पूर्ण, दान्ते वर्जिल आदि कवियों और कलाकारों की जन्म भूमि ने इन पर गहरा प्रभाव डाला। इस वातावरण ने इनके हृदय में एक रस भर दिया। वही रस काव्य के रूप में प्रस्फुटित होने लगा। सन् १८९८ के सितम्बर में यह विलायत से लौटकर अपने घर आगई।

विवाह और सामाजिक जीवन में प्रवेश

विलायत से लौटने के केवल तीन महीने बाद इन्होंने एक बड़े साहस का काम किया। जाति-पांति समस्त बन्धनों को तोड़ कर डाक्टर मेजर एम० जी० नायडू से विवाह कर लिया। तब से बराबर वह भारतीय नारियों तक जागरण का सन्देश पहुंचाती रही हैं। वह भारतवर्ष में नारी-आन्दोलन की जन्म दात्री हैं। इस काम में इन्होंने अटूट धैर्य लगन तथा उत्साह के साथ काम किया है। इसी का परिणाम है कि भारतीय-नारियां आज इतनी संगठित हो गई हैं।

हालां कि उनकी शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य ढंग की हुई है, परन्तु उन्होंने सदैव ही भारतीय संस्कृति और आदर्श को अपनाया है। वह भारतीय नारियों का तनिक भी अपमान नहीं सह सकती हैं। एक बार बङ्गाल के गवर्नर ने भारतीय नारियों के प्रति कुछ अपमान जनक शब्द कह दिये थे। इस पर हमारी चरित नायिका ने वह आन्दोलन किया कि लाट साहब को क्षमा-याचना करनी पड़ी थी।

सन् १९१९ में वह भारतीय होमरूल लीग डेपूटेशन की सदस्या होकर विलायत गईं। उन्होंने सेलवोर्न कमेटी के सामने स्त्रियों के मताधिकार के पक्ष में जो गवाही दी थी, वह इतनी सुन्दर थी कि लार्ड सेलवोर्न ने उसकी प्रशंसा में ये शब्द कहे थे—

",If I may be allowed to say so, it illuminates our

prosoic literature with a poetic touch"—आप लोगों की आज्ञा से मैं यह कहना चाहूंगा कि इस गवाही ने हमारे शुष्क गद्यात्मक साहित्य को कवित्वपूर्ण स्पर्श से आलोकित कर दिया है।" इसके साथ ही उनमें साम्प्रदायिकता का तनिक भी आभास नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों में उनकी समान प्रतिष्ठा है।

राजनीति में प्रवेश

पीड़ितों के प्रति सहानुभूति उनमें जन्म से थी। सन् १९१५ से ही वह कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने लगी थीं। इसी सहानुभूति का दूसरा रूप था कि वह सदैव ही हिन्दू मुसलमानों में पूर्ण ऐक्य स्थापित करने का सुख-स्वपप्न देखती रही हैं। सन् १९१३ में लखनऊ में होने वाले मुस्लिम लीग के अधिवेशन में इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया था। सन् १९१७ में पटना में इन्होंने कहा था कि "इस विशाल देश में मुसलमान अपना घर बनाने को आये हैं—नकि इसलिये कि लूट मार करके वे अपने घर चले जायें। वे इस देश में अपना स्थायी घर बनाने आये थे और मातृभूमि को सम्पन्न बनाने के लिये एक नई सन्तति पैदा करना ही उनका उद्देश्य था। तब वे इस भूमि के बच्चों से अलग कैसे रह सकते हैं? क्या इतिहास यही बताता है कि भूतकाल में वे हिन्दुओं से अलग रहते थे। अथवा यह बताता है कि एक बार इस देश को अपनी मातृभूमि बना लेने के बाद वे इस भूमि के बच्चे बन गये और हमारे मांस के मांस और खून के खून (बिलकुल अपने) हो गये।

सन् १९२१ में वे भारतीय स्त्रियों के मताधिकार आन्दोलन के सम्बन्ध में इङ्गलेण्ड गईं। इन दिनों इनका जीवन पूर्ण वैभव व विलासमय था। कविताओं के कारण इनका इङ्गलैण्ड के विद्वत्समाज

में तो सम्मान था ही, साथ ही वह अपने वस्त्र-परिधान और कला पूर्णता के लिए भी प्रसिद्ध थीं। पश्चिमी निर्भीकता, पूर्वी रहस्यमयता तथा शालीनता से उनका जीवन ओतप्रोत था।

जब यह विलायत से लौटीं, उन दिनों अमृतसर के हत्याकाण्ड हो चुके थे। गाँधी जी के नेतृत्व में भारतीय आत्मा जगमगा उठी थी। भारत के आकाश पर घटाएँ छा रही थीं। असहयोग आन्दोलन का शंखनाद कोने कोने में गुञ्जायमान था। जहाज़ में ही इनके हृदय में संघर्ष होने लगा था। बम्बई में उतरते उतरते इन्होंने गाँधीजी को आत्मसमर्पण करने का निश्चय कर लिया। वह लिबरलों के शुष्क तर्क-युद्ध से प्रभावित न हो सकीं। गांधी जी के युद्ध में कवि की आत्मा को स्पर्श करने वाले तत्व विद्यमान थे। जिस नारी ने बम्बई की सड़कों पर ज़ब्त पुस्तकें बेचकर क़ानून तोड़ा हो, सन् १९२० में पंजाब की घटनाओं के सिलसिले में इंगलैण्ड में अपने भाषण में कहा कि 'my sisters were stripped naked; they were jogged; they were outraged (मेरी बहिनें नंगी की गईं, उनमें कोड़े लगाये तथा उनकी आबरू उतारी गई) वह देवी भला कोरे तर्क वितर्क से कैसे सन्तुष्ट हो सकती थी?

११ मार्च सन् १९२२ को राज-द्रोह के अभियोग में महात्मा गांधी को ६ वर्ष की सज़ा हुई थी। जेल जाते समय महात्मा जी ने इनसे ये शब्द कहे थे, "I entrust the unity of India into your hands" "भारत की एकता मैं तुम्हारे हाथों सौंपता हूं।" सरोजिनी देवी ने सिर झुकाकर बापू की थाती को स्वीकार किया। एकता की धूनी रमाकर वह सर्वत्र एकता का सन्देश सुनाती हुई देश भर में घूमती रहीं। अहमदाबाद में भाषण देते हुए उन्होंने विह्वल कंठ से ये शब्द कहे थे—"गांधी जी को वे लोग पृथ्वी के

अन्तिम छोर तक लेजा सकते हैं पर उनकी मंजिल उनके देश-भाइयों के हृदय में ज्यों की त्यों अटल है—उन देश-बन्धुओं के, जो उनके अद्वितीय स्वप्नों और कार्यों के पोषक तथा उत्तराधिकारी हैं।"

इस दौड़ धूप में स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्हें लङ्का जाना पड़ा। वहाँ भी इन्होंने अपना काम जारी रखा। 'भारतीय पुनरुत्थान' पर इनके एक व्याख्यान को सुनकर लङ्का की राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री एच० जे० सी० पेपरी के ये शब्द स्मरणीय हैं—"जिस प्रकार श्री रवीन्द्रनाथ भारतीय पुनरुत्थान के पुरुष-कवि हैं, उसी प्रकार सरोजनी देवी उसकी नारी-कवि हैं।"

इस प्रकार वह बराबर देश-सेवा में लगी रहीं। प्रवासी-भारतीयों की सेवा में भी इनका बड़ा हाथ रहा। यह दक्षिण अफ्रीका भी गई थीं। भारत की ओर से वहां इन्होंने यह सन्देश दिया था—"सम्भव हुआ तो भारत ब्रिटिश साम्राज्य में रहेगा और आवश्यकता हुई तो वह उससे बाहर हो जायगा। इसका निर्णय दक्षिण अफ्रीका के अधीन है।" इनके ओजस्वी तथा प्रामाणिक भाषणों के सन्मुख गोरों को भी भारतीयों के पक्ष के औचित्य को स्वीकार करना पड़ा था।

हमारी चरितनायका की देश-सेवा के कारण उनके प्रति जनता में अपूर्व सम्मान उत्पन्न हो गया और सन् १६२५ की कानपुर कांग्रेस में वह अध्यक्षता निर्वाचित हुई। राष्ट्र ने इन्हें सर्वोच्च गौरव प्रदान करके अपने को धन्य माना। सभानेत्री के स्थान से दिया गया उनका भाषण अत्यन्त सीधा-सादा तथा उनकी सर्वग्राही प्रवृत्ति एवं साधना के अनुकूल था। तनिक देखिये—"मैं एक स्त्री ठहरी, इसलिये मेरा कार्य-क्रम सीधा-सादा गृहस्थी से सम्बन्ध रखने वाला है। मैं तो केवल यह चाहती हूं कि भारतमाता अपने घर को फिर एक बार

स्वामिनी बन जाय, उसके अपार साधनों पर उसी का एक छत्र प्रभुत्व हो और आथित्व-सत्कार की सारी क्षमता भी उसी के हाथ में रहे। भारतमाता की आज्ञाकारिणी पुत्री के नाते मेरा यह कर्त्तव्य है कि अपनी माता का घर ठीक करूं और उन शोचनीय झगड़ों का निपटारा कराऊँ जिनके कारण उसका पुराना संयुक्त पारिवारिक जीवन, जिनमें अनेक जातियां और धर्म सम्मिलित हैं, भंग न हो जायें। मेरा यह भी काम होगा कि उसकी निम्न से निम्न और बलवान से बलवान सन्तान को, उसकी पोष्य सन्तान् को और उन सब अतिथियों और अपरिचितों को, जो उसके द्वार के भीतर मौजूद हैं, समान अधिकार प्राप्त हों।" इस वक्तव्य में हम स्पष्ट ही एक उच्च आदर्श के दर्शन करते हैं, जो भारतीय मातृत्व के सर्वथा अनुकूल है।

इन्होंने आगे भी अपनी मृदुल वाणी द्वारा राष्ट्र की शिथिल आत्मा में इस प्रकार आशा का सञ्चार किया था—स्वतन्त्रता संग्राम में भय एक मात्र अक्षम्य अपराध है और निराशा एक मात्र अक्षम्य पाप तब से आज तक बराबर इन्होंने अपने इस उपर्युक्त वाक्य का अनुसरण किया है!

गांधी जी के गिरफ्तार हो जाने के बाद धरसाना नमक डिपो पर धरना देने का नेतृत्व इन्होंने ही किया था। २७ घण्टों तक लगातार, बिना अन्न-जल ग्रहण किये हुए यह उस कड़ी धूप में सड़क पर बैठी रहीं। बाद में वह गिरफ्तार करली गईं। उनकी गिरफ्तारी ने संसार को यह बता दिया कि भारतीय नारी आज किसी अन्य देश की नारियों से पीछे नहीं है। वह आज दुर्गावती अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई आदि वीरांगनाओं की तरह भूमि की रक्षा के लिये सर्वस्व निछावर करने के लिये मैदान में खड़ी है।

इनकी काव्य-अर्चना के विषय में,हम अन्यत्र संकेत कर ही चुके हैं। उसके विषय में विस्तार से लिखना अवसर के प्रतिकूल ही होगा। और न उसके लिए हमारे पास स्थान ही है। हाँ इतना अवश्य है कि उनकी कविता में स्वप्रसूता भावनाओं तथा अन्तरतम के उच्छ्वासों की निर्झरिणी अवाध रूप से बहती हुई दिखाई देती है। हम संक्षेप में दो तीन बड़े बड़े विद्वानों की इनकी कविता के बारे में राय दे देना उचित समझते हैं।

वह अधुनिक संसार की सर्वश्रेष्ठ जीवित कवयित्री हैं—"x x and one may safely say, without much fear of challange, that she is perhaps the greatest living poetess to-day" (Alftred E. Pheres in the Japan Times.)

अपनी पुस्तक 'भारतीय स्त्रियों की चुनी रचनाएँ, (Select Poems by Indian Women) की भूमिका में मार्गरेट मैकनिकोल ने लिखा है कि, "सरोजिनी की कविताओं में, सम्पूर्ण विषमताओं को मिटा कर स्वरसामञ्जस्य लाने वाला प्रवाह है।"

इनकी कविताओं में प्रेम, अध्यात्मा, प्रकृति का वैभव, करुणा तथा दिव्यानन्द सन्देश सब कुछ मौजूद है। इनका कविताओं के तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—The Golden Threshold, The Bird of Time तथा Broken wings.

स्वाभाविक रूप में हम अपनी नायडू देवी को तीन रूपों में पाते हैं—कन्या, रमणी तथा माता। आज बहुत दिनों से इन्होंने कविता करना कम कर दिया है। वह बढ़ कर लोक में समा गई हैं। नारी माता बन गई है। उनका जीवन मानों अगणित बालकों में बट कर विस्तृत हो गया है।

एक बार उनसे बहुत से लोगों ने पूछा था कि उन्होंने काव्य को क्यों छोड़ दिया है ; वह कोलाहलमय संसार में क्यों आगई हैं । इस प्रश्न का उन्होंने बड़ा ही सरस एवँ उपयुक्त भावना से ओतप्रोत उत्तर दिया था । उसके दो-तीन वाक्य देखिये :—संग्राम की कठिनाइयों में ही कवि का भाग्य निहित है कवि होने के लिये यह एक आवश्यक बात है कि वह भय के समय, पराजय और निराशा की घड़ियों में, स्वप्नदर्शी से कह सके कि अगर तुम सच्चा स्वप्न देख रहे हो, तो समझ लो कि सारी कठिनाइयाँ, सारे भय, सारी निराशाएँ माया (मिथ्या) हैं, केवल आशा ही सत्य है । × × × मैं स्वप्नों की स्वप्नदर्शिनी इस कोलाहल के बाज़ार में खड़ी होकर तुमसे कहती हूं—'बन्धुओ जाओ और विजय प्राप्त करो ।'

आज से वर्षों पूर्व इन्होंने एक कविता लिखी थी जिसका भाव यह है :—जहाँ विश्व की भीड़ और कोलाहल के संघर्ष में, सज्ञान और अनौचित्य के विरुद्ध मधुर प्रेम का युद्ध चल रहा है और जहाँ वीर हृदय युद्ध का खड्ग लेकर जाते हैं, वहां सङ्गीत का झण्डा ले जाना मेरा काम है । मेरा काम प्रकम्पित और विचलित ओदठों तक शांति तथा आशा पहुंचाना, तथा असफल तथा असहायों को शक्ति प्रदान करना है। जब शान्ति विजयिनी होगी, तब सत्य विजयी होगा और प्रेम का राज्य फैल जायगा, तब सब के पास तक आनन्द की लहरें पहुंचाना मेरा काम है ।" इसी में इनके जीवन की केन्द्रीय धारा प्रकट है ।

वाणी तथा हृदय के, वाह्य एवं आन्तरिक दोनों सौन्दर्यों के कारण वह अपने 'सरोजिनी' नाम को चरितार्थ करती हुई 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत की सत्यता प्रकट करती हैं । आज स्वतन्त्र भारत में वह हमारे प्रान्त की गवर्नर हैं ।

समाप्त